UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180883

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·G/M43D Accession No. G.H.151

Author मथुर, गिरिजाकुमार

Title धूप के थान पर

This book should be returned on or before the date last marked below.

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क ३९

# धूप के धान

श्री गिरिजा कुमार माथुर

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द जैन, एम० ए०

प्रकाशक
**अयोध्याप्रसाद गोयलीय**
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५५ ई०
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
**पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,**
भार्गव भूषण प्रेस, बनारस

: आगत फ़सल की राह में :

# अनुक्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | नई भारती | ... ... | १ |
| २. | भोर : एक लैंडस्केप | ... ... | ३ |
| ३. | लैंडस्केप | ... ... | ४ |
| ४. | युगारम्भ | ... ... | ६ |
| ५. | एशिया का जागरण | ... ... | ८ |
| ६. | पहिये | ... ... | १७ |
| ७. | प्रौढ़ रोमांस | ... ... | २२ |
| ८. | शाम की धूप | ... ... | २७ |
| ९. | दो चित्र | ... ... | ३३ |
| १०. | महाकवि | ... ... | ३६ |
| ११. | पन्द्रह अगस्त | ... ... | ३९ |
| १२. | सावन के बादल | ... ... | ४१ |
| १३. | नई दिवाली | ... ... | ४२ |
| १४. | सायंकाल | ... ... | ४४ |
| १५. | बरफ़ का चिराग़ | ... ... | ४८ |
| १६. | आग और फूल | ... ... | ५१ |
| १७. | रात हेमंत की | ... ... | ५४ |
| १८. | धूप का ऊन | ... ... | ५६ |
| १९. | मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो | ... ... | ५९ |
| २०. | न्यूयार्क की एक शाम | ... ... | ६२ |
| २१. | मैनहैटन | ... ... | ६४ |
| २२. | न्यूयार्क में फॉल | ... ... | ६८ |
| २३. | चाँदनी गरबा | ... ... | ७३ |

२४. सिन्धु तट की रात ... ... ७४
२५. दिवालोक का यात्री ... ... ७६
२६. याज्ञवल्क्य और गार्गी ... ... ७९
२७. नये साल की साँझ ... ... ८०
२८. मिट्टी के सितारे ... ... ८२
२९. तीन ऋतु चित्र ... ... ८४
३०. पूरब की किरन ... ... ८७
३१. पृथ्वी प्रियतम ... ... ८८
३२. रात है ... ... ९०
३३. तैंतीसवीं वर्षगाँठ ... ... ९१
३४. चन्दरिमा ... ... ९४
३५. ढाकवनी ... ... ९५
३६ ऑटोग्राफ ... ... १००
३७. गीत ... ... १०१
३८. देह की आवाज ... ... १०३
३९. सावन की रात ... ... १०९
४०. हेमन्ती पूनो ... ... १११
४१. चरित्र की केसर ... ... ११३
४२. इतिहास ... ... ११६
४३. नींव रखनेवालों का गीत ... ... ११९
४४. इन्दुमती ... ... १२१
४५. धरा दीप ... ... १३३

# निवेदनम्

प्रस्तुत कविता-संग्रह पिछले नौ-दस वर्षोंकी मेरी चुनी हुई रचनाओंका कलन है। इन वर्षोंमें हिन्दीकी नई कविता पनपी और बढ़ी है, उसका सुकुमार पौधा अनजानी और अपरिचित मिट्टियोंसे रस लेकर बलवत्तर हुआ है, उसकी शाखाएँ फैली हैं और काव्य-क्षेत्रमें अब वह क्रमशः गरिमा तथा प्रतिष्ठाकी ओर अग्रसर होगा ऐसा निश्चित है। हर नई चीज़की तरह हमारी नई कविताके सम्मुख भी गम्भीर समस्याएँ रही हैं। नये कविने साहसके साथ उनका सामना किया है और अपने यत्नोंमें वह अन्ततः सफल होगा यह हमारा विश्वास है। यदि उसमें यह शक्ति न होती तो उसके ये प्रयत्न एकाकी और एकान्तिक रहकर कभीके समाप्त हो गये होते। यह नई कविताके उज्ज्वल और जीवन्त पक्ष का ही प्रमाण है।

इतना होते हुए भी लोगोंको नई कवितासे शिकायत है। और यह कोई अचरजकी बात नहीं है क्योंकि मैं समझता हूँ हर युगमें नवीनके प्रति इस प्रकारकी शिकायतें रहा करती हैं। स्वयं कालिदास और भवभूति जैसे महान् कृतिकारोंको जो अपने युगके लिए एकदम नये और विद्रोही थे ऐसे ही विरोधसे आक्रान्त होकर कहना पड़ा था :

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।"

—कालिदास

"ये नाम किञ्चिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
कुर्वन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

—भवभूति

पर ज्ञान-विज्ञानके इस ज़मानेमें जब कि हर क्षेत्रमें विशेषीकरण है इन शिकायतोंने भी विशेषका जामा पहन लिया है। छायावादका युग जब समाप्त हुआ और नग्न यथार्थ कवितामें आने लगा तब लोगोंको शिकायत हुई कि कवितामें गंदगी, भोंडापन और फूहड़पन आता जा रहा है। फिर इस प्रकृत यथार्थसे जब कवि-समाज यथार्थपर आया तो शिकायत हुई कि वह भौतिकवादी प्रचारक हो गया है। अगर उसने अपनी दृष्टि केवल व्यक्तिकी मानसिक समस्याओं तक ही सीमित रखी तो लोगोंने उसपर भोगवादी होनेका लांछन लगाया और उसके कृतित्वको अनैतिक और उच्छृङ्खल कहा। जब वह अपने माध्यमोंमें तेज़ीसे रद्दोबदल करने लगा, छन्द और उपमानोंको उलट-पलटकर नई ज़मीन खोदने लगा, अपने गहरे और सूक्ष्म मनोवेगोंकी अभिव्यंजनाके लिए अपरिचित प्रतीक जुटाने लगा, अरूपका मूर्तसे चित्रण करने लगा तो उसे अनर्गल प्रलापी, निहिलिस्ट और ग़ैरईमानदार कहा जाने लगा।

बात यहीं तक रहती तब भी ग़नीमत थी। शिकायतकी यह आँधी उससे भी आगे बढ़ी और उसने अपनी लपेटमें स्वयं इन कवियोंको ले लिया। परिणामतः पहिलेके प्रकृतवादी प्रगतिवादियोंपर नाक-भौं चढ़ाने लगे, प्रगतिवादी व्यक्ति-मन वालोंको कोसने लगे और फिर यह तीनों मिलकर वस्तु और माध्यमकी उलट-पलट करनेवाले नये रंगरूटोंमें अपने चेले ढूंढ़ने लगे। कवियोंके साथ-साथ लेकिन उनसे कहीं बड़ी आलोचकोंकी एक जमात इन पांतियोंके समर्थन और विरोधमें आकर इकट्ठी हो गई।

इन शिकायतोंको अलग-अलग यदि हम देखें और उतनी देर केवल एक ही प्रकारकी कविताको ध्यानमें रखें तब तो यही आभास होगा कि सन् चालीससे आजतक जो कुछ भी लिखा गया है वह कोरी बकवास रही है, अर्थात् इन पन्द्रह वर्षोंमें काव्य-क्षेत्रमें कोई गरिमामय उपलब्धि होना तो दूर रहा अराजकता, विशृंखलता, तोड़-फोड़ और मारा-मारीका ही बाज़ार गर्म रहा है। लेकिन यदि हममें इन शिकायतोंके बीच कोई अन्तःसंबन्ध (को-रिलेशन) खोजनेकी जिज्ञासा है, उन्हें अलग-अलग न रखकर इतिहास-

की विराट् पीठिका पर जुड़ी हुई लड़ीकी तरह देखने-परखनेकी दृष्टि है तो हमें इन शिकायतोंसे निराश होनेकी जरूरत नहीं होगी। हम इस समय उन आलोचनाओंकी बात नहीं कर रहे जो इस दुराग्रहसे की जाती हैं कि जो कुछ पुराना है वही ग्राह्य है, जो कुछ नया है वह परम्परारहित और भ्रष्ट है; अथवा वे अतिवादी आलोचनाएँ जिनका सिद्धान्त-सूत्र ही यह है कि 'जो हमारे साथ नहीं वह हमारा शत्रु' है। हम समझदार पाठक और आलोचक की शिकायतोंको ही ध्यानमें रख रहे हैं। उनका एक आशाजनक पक्ष यही है कि वे प्रत्येक शैलीकी कवितापर अलग-अलग की गई हैं। इस बिलगावमें ही उनके अन्तःसम्बन्धका रहस्य छिपा है। प्रगतिशील कविता और उसके रूपान्तरोंपर भी उतनी ही आलोचना हुई है जितनी प्रयोगशील कविता और उसके रूपान्तरों पर। इसका अर्थ यह हुआ कि इन सभीमें पाठक या आलोचक कोई-न-कोई कमी महसूस करता रहा है, उसके मनको पूरी तरह छूकर उन्होंने संतोष नहीं पहुँचाया और इस तरह अलग-अलग वे सब उसे एकांगी और आनुषंगिक लगती रही हैं। नई कविताके विभिन्न क्षेत्रों और शैलियोंकी सीमाएँ, उनमें अन्तर्निहित कसर या कमी ही वह सूत्र है जो इन आलोचनाओंको एक भूमि पर लाकर खड़ा कर देता है। इसलिए इन शिकायतोंको उदार दृष्टिसे देखने और उन आलोच्य कमियोंको दूर करनेकी आवश्यकता है जिनके कारण हमारी अधिकांश नई कविता अब तक प्रयोगावस्थासे आगे नहीं बढ़ पाई और उसमें प्रौढ़ता तथा परिपक्वताकी कमी दिखाई देती है।

नई कवितासे हमारा अर्थ उस समस्त कवितासे है जो पुरानी धाराकी प्रतिक्रिया स्वरूप काव्य-क्षितिजपर उदित हुई है। कवितामें वस्तु और शैलीकी हम कोई वर्णाश्रम-व्यवस्था माननेके पक्षमें नहीं हैं। शैली या विचार-वस्तुके श्रेष्ठ तत्त्व चाहे वह काव्यके किसी निकायसे आये हों हमारे लिए अछूत नहीं। हम यह मानते हैं कि श्रेष्ठ साहित्य पक्षधर नहीं होता, वह विभिन्न और प्रत्यक्षतः विरोधी दिखनेवाले पक्ष या प्रवृत्तियोंका समन्वय करता चलता है, उनके आधारभूत मूल्यों और तत्त्वोंको समेटकर उनमें संतुलन

स्थापित करता है। साहित्यका यही नैतिक पक्ष है जो उसे महान् दर्शनकी श्रेणीमें ला बिठाता है। साहित्य और राजनीतिमें इसी कारण अन्तर है क्योंकि जहाँ राजनीति पक्षधर मात्र ही होती है और अपने दल अथवा संप्रदायके संकुचित स्वार्थों, आचार-विचारों, अनुशासन-नियमों और मतवादोंकी बाह्य प्रतिष्ठामें उलझी रहती है वहाँ साहित्य राजनीतिकी संकीर्ण सीमाओंसे परे उसके बुनियादी सिद्धान्तों तक जाता है और उसके मंगल तत्त्वोंपर ही अपनी दृष्टि रखता है। ऐसे विभिन्न मौलिक तत्त्वोंको लेकर वह एक गहरी और व्यापक मानवीयताकी पीठिकापर उनका समन्वय करता है। राजनीतिसे उसका इतना ही सम्बन्ध है। वह तत्कालीन राजनीतिक विचारदर्शनोंसे प्रभावित अवश्य होता है पर प्रभावित होकर, उनका सांप्रदायिक अनुयायी बनकर नहीं रह जाता, वह उससे आगे बढ़कर भिन्न राजनीतिक अन्तर्विरोधोंमें समाधान ढूँढ़ता है और ऐसे मानवीय उत्तर प्रस्तुत करता है जो मात्र राजनीति या अर्थनीति नहीं दे सकती। इस प्रकार जब साहित्यकी भूमि आधारगत मानवी मूल्योंकी है तब वह किसी एक प्रवृत्ति या पक्षविशेष तक सीमित होकर या उसमें समाकर नहीं रह सकता। उसके लिए उन सभी प्रवृत्तियों और पक्षोंके वे तत्त्व ग्राह्य होते हैं जिनका रास्ता मानवीयता, सामाजिक न्याय और जीवन भविष्यकी आस्थासे होकर जाता है।

यह मानवीय मूल्य क्या हैं और उनकी क्या कसौटी है इसका संकेत करना यहाँ आवश्यक है। आज हमें चारों ओर मानवताकी आवाज़ उठती सुनाई देती है। प्रत्येक मतवाद मानवताकी बात करता दिखाई पड़ता है। मानवीयता और मानवीय मूल्योंकी तरह-तरहकी परिभाषाएँ दी गई हैं और दी जा रही हैं। इन परिभाषाओंमें एक दूसरेसे कोई साम्य नहीं है। प्रत्येक पक्ष मानवताकी एक विभिन्न और विचित्र कसौटी बतलाता है। धार्मिक मानववाद, व्यक्ति मानवता, वैयक्तिकतावाद, अस्तित्ववादी मानवीयता, ऊर्ध्वमानववादसे लेकर सामूहिक मानवता तककी उद्भावना इन परिभाषाओं द्वारा की गई है। इन परिभाषाओंके पीछे प्रच्छन्न रूपसे

राजनीतिक शक्तियों अथवा स्वार्थोंका हाथ है या नहीं यह इस समय हमारा विषय नहीं है। इसके एक अन्य पक्षकी ओर हम संकेत करना चाहते हैं। और वह यह है कि मानवता अब तक अरूप भावना (एब्सट्रेक्ट कन्सेप्ट) ही रही थी जिसकी चर्चा एक रहस्यात्मक ढंगसे धर्मदर्शन करते थे। आज इन विभिन्न परिभाषाओं-द्वारा उसके रहस्यका उद्‌घाटन करनेका प्रयत्न किया जा रहा है, यथार्थ जीवनके अनगिनती पक्षोंमें उसके स्वरूपको सर्वशः देखनेकी चिन्ता की जा रही है। इसलिए यह दावा उचित नहीं है कि केवल एक ही प्रकारके विचारचिन्तनने मानवताके सम्पूर्ण दर्शन कर लिये हैं और मात्र वही ठीक है, बाक़ी सब ग़लत हैं। यह उसी प्रकारका अतिवादी दावा या तर्क है जैसे मध्ययुगोंमें धर्मके विभिन्न सम्प्रदाय केवल अपनी पद्धतिसे ही ब्रह्म या ईश्वरके साक्षात्कारका दम्भ भरा करते थे। ईश्वरके रहस्योद्‌घाटनके नामपर विश्वके अनेक धर्मसम्प्रदायोंने बड़े-बड़े विवाद, शास्त्रार्थ, झगड़े, आक्रमण, अग्निकाण्ड, सामूहिक रक्तपात और युद्ध रचाये थे। कालान्तरमें सामाजिक, आर्थिक तथा वैचारिक परिवर्तन आये और धर्म-सम्प्रदायोंका स्थान राजनीतिक मतवादोंने ले लिया, ईश्वरका स्थान मानवताने। आज मानवताके कल्याणके नामपर विग्रह, रक्तपात, शीतयुद्ध, और महायुद्ध रचाये जाते हैं और अणुयुद्धकी भीषण तैयारियाँ की जाती हैं। पहिले ईश्वरकी अमूर्त भावनाके नामपर मानवताका ख़ून बहाया जाता था, आज मानवताके रहस्यपूर्ण नामपर मानवताका ख़ून बहाया जाता है। इतना प्रत्यक्ष है कि अब मानवताकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है, इसलिए प्रत्येक कार्यमें उसकी दुहाई दी जाती है। इसका अर्थ यह भी है कि आज इंसानियत अपने अधिकार और दायित्वोंके प्रति अधिक जागरूक है और दिन प्रतिदिन वह अधिक जागरूक होती जा रही है। यह समूची इंसानियतका दबाव ही है जिसके कारण प्रत्येक मतवाद उसकी प्रतिष्ठाका दम भरता है। मानवीयताकी जो आज अनेक परिभाषाएँ दिखलाई पड़ती हैं उनमेंसे वही तत्त्व जीवित रह सकेंगे जो इस सचेतन मानवताके कामके होंगे, जिनके द्वारा यथार्थ जीवनमें उसे भविष्य-

मंगल प्राप्त होता जायगा। शेष व्यर्थ तत्त्व उसी तरह लुप्त हो जाएँगे जैसे आज धर्मसम्प्रदायोंके संघर्षरत विचारादर्शोंका नाम-निशान नहीं रहा। उनकी आग इतिहासके महान् चक्रके नीचे कुचल कर बहुत पहिले ही बुझ गई थी। कोई कारण नहीं है कि आजकी युद्ध उगलती विचारधाराओंके साथ भी इतिहास यही बर्ताव न करे। मनुष्यकी सीमित आयुके अनुपातमें यह संघर्ष अवश्य ही चिरस्थायी दिखाई देते हैं। पर समय और इतिहासके विराट हाथों उनका फैसला होना निश्चित होता है। और जिस प्रकार धर्म-संप्रदायोंकी आँच मानवताका एक व्यापक आलोक-संकेत छोड़कर मिट गई थी उसी प्रकार आजके विरोधी मतवादोंके समन्वयसे भयरहित, कष्ट-त्रासरहित, अर्थ-मुक्त मानवताके एक सर्वांगीण दर्शनकी उत्पत्ति होगी जिसमें श्रद्धा, निष्ठा, आस्था, विनय, शील, प्रेम, जीवन-सम्मान, सामाजिक न्याय, अन्तःकरणकी नैतिक स्वतन्त्रता प्रतिष्ठित होगी। इसी पीठिका पर स्वस्थ मुक्त मानवताका नया व्यक्तित्व उदित होगा जिसमें बाह्य अर्थ-व्यवस्थाकी तुष्ट और परिपूर्ण नींवपर बुद्धि, विवेक, मर्यादा और असीम प्रेरणाके नये मानसिक स्तर प्राप्त होंगे। यही वह मानवीय मानमूल्य है जिनके आधारपर नवीन काव्य-साहित्यको उठना अपेक्षित है।

इस विश्लेषणको सम्मुख रखनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि नई कविता अबतक क्यों एकांगी रही है। उसकी विभिन्न विवादरत शैलियोंने जीवनको केवल एक ही सीमित और कट्टर दृष्टिकोणसे देखा है। एक दृष्टिकोणने दूसरेको सिद्धान्त विरोधी कहकर दूसरे प्रकारके श्रेष्ठ तत्त्वोंको या तो स्वीकार ही नहीं किया या उनको समाजविमुख कहकर अछूतकी तरह दूर रहने दिया है। कविताकी विचारवस्तुमें इसलिए हमें अक्सर उलझाव, दिग्भ्रम, अर्थहीनता, विशृंखलता, भटकती तर्क-विचारपद्धति, दुःखवाद, नियतिवादी पीड़ा, द्विविधा, संदेह, अश्रद्धा, अनास्था देखनेको मिलती है। इस वैचारिक दिग्भ्रमके कारण इन बहुतसे नये कवियोंको यह समझमें नहीं आता कि कौन-सा जीवन दर्शन उपयुक्त है, कौन-सा रास्ता उनका है। जब कविके विचार-जगत्में यह गंभीर उलझाव और कुहासा है तो उसकी अभिव्यंजनाके

जो उपकरण हैं अर्थात् भाषा, प्रतीक, उपमान, छंद अपने आप अस्वाभाविक, अधूरे, खंडित और रूप-व्यक्तित्व-विहीन होंगे। भाषा जानबूझकर बिगाड़ी या गढ़ी हुई होगी जिसका व्यावहारिक जीवनसे कोई सम्बन्ध न होगा, चेष्टापूर्ण लाये हुए निरर्थ, बोधशून्य प्रतीक होंगे, उपमानोंमें कोई तारतम्य नही होगा और छन्दके नामपर भ्रष्ट गद्य भी न मिलेगा। चमत्कार पैदा करनेके लिए, कविताको साधारणसे अलग दिखानेके लिए शोमैनशिपके नये-नये तरीक़े अपनाये जायेंगे, दूरकी कौड़ी लानेका अथक प्रयत्न किया जावेगा ताकि लोग चौंक पड़ें और कहें कि हाँ, यह नई बात है। नई कविताकी ओटमें ऐसे कुछ खोटे सिक्के भी आज चलाये जा रहे हैं लेकिन समय बहुत शीघ्र उन्हें कूड़ेके ढेरमें फेंक देगा। यदि नये कृतिकारको काव्य-साहित्यमें अपना गम्भीर योगदान देना है तो इन कमज़ोरियोंसे उसे ऊपर उठना होगा।

उपर्युक्त वैचारिक दिग्भ्रमके परिणामस्वरूप मानवतापर सांस्कृतिक संकट, सामाजिक विघटन और साहित्यमें गतिरोधकी आवाज़ भी अक्सर उठाई जाती है। यह तो हम मानते हैं कि मानव संस्कृति बड़े विराट और व्यापक परिवर्तनोंमें से होकर गुज़र रही है, उसके मूल्य-मानोंमें आमूल उखाड़-पछाड़ हुई है, पर इन महान् परिवर्तनोंको संकट कैसे कहा जा सकता है। संकट तो वह होता है जो भयकारी, विनाशकारी, अहितकर और मनुष्य-समाजके लिए घातक होता है। किन्तु तात्त्विक परिवर्तनोंका यह क्रम ऐसा कदापि नहीं है। यह परिवर्तन मानव-समाजके स्वाभाविक विकासका ही परिणाम है। वे कारण नहीं हैं बल्कि कार्य हैं, प्रतिपल विकासमाना सामाजिक प्रक्रियाके नतीजे हैं। माना कि इन परिवर्तनोंसे सामाजिक विघटन हुआ है और एक नवीन स्तरपर आकर उनमें संतुलन स्थापित होना शेष है, पर यह भी सत्य है कि ये विघटित तत्त्व स्वयं एक नई संतुलन-भूमि खोजनेके लिए क्रियाशील हैं। किसी भी आमूल परिवर्तनसे सामाजिक और सांस्कृतिक विघटन होना स्वाभाविक है किन्तु जो जानते हैं कि ऐसे परिवर्तन ऐतिहासिक विकासकी अनिवार्य शर्त हैं, संधिकालके विघटन स्थायी नहीं होते बल्कि एक गुज़रती हुई अस्थायी परिस्थिति मात्र होते हैं, जो इन परिवर्तनोंको

मंगल भविष्यकी पूर्व पीठिका मानते हैं, जो परिवर्तनोंके साथ क़दम मिलाकर चलते हैं उन्हें ऐसे परिवर्तन संकट नज़र नहीं आते। पुराणवादी, रूढ़िप्रिय दृष्टियाँ ही उन्हें संकटके रूपमें देखती हैं क्योंकि वे परिवर्तन-विरोधी होती हैं, उनसे डरती हैं, और समाजको यथास्थिति (Status quo) में रहने देना चाहती हैं। सामाजिक परिवर्तन उनकी पूर्वस्थितिको खतरेमें डालते हैं इसलिए परिवर्तन उन्हें भयावह और संकटपूर्ण दिखाई देते हैं। साहित्यमें गतिरोधकी दुहाई सांस्कृतिक संकटवाले इसी रूढ़िग्रस्त, डिकेडेण्ट दृष्टिकोण-का रूपान्तर है। नये कविको अपेक्षित है कि इस भ्रमजालके चेहरेपर पड़ी नकाब उतारकर देखे, दृष्टिभेद न होने दे और उसे छोड़कर अनास्थासे आस्थाकी ओर बढ़े।

नई कविताकी इन कमज़ोरियोंसे परिचित होते हुए भी हम उसके भविष्यसे आश्वस्त हैं। उसकी तात्कालिक उपलब्धिसे हमें यह देखकर चाहे असन्तोष हो कि उसमें जो कुछ लिखा गया है उसका एक भाग ऊलजलूल और निरर्थक है, किन्तु उसके प्रेरक सिद्धान्त, नवीन लक्ष्योंकी ईमानदारी और श्रेष्ठता अप्रतिम और बेजोड़ है। काव्य-साहित्यकी सीमाओंका इन नवीन प्रयत्नोंसे बहुत बड़ा प्रसार हुआ है, उसके द्वारा नई दिशाएँ खुली हैं। जीवनका छोटे-से-छोटा पक्ष, साधारणसे-साधारण विषय अब काव्यकी गरिमाके अयोग्य नहीं रहा। सधे जमे और एक परिचित दायरेमें घूमने-वाले प्रतीक उपमानोंके स्थानपर वस्तु जगत्के समस्त क्रियाकलापोंको उसने अपनी वर्द्धमान उँगलियोंसे छूकर उन्हें ग्रहण किया है। मानसिक जगत्की अनेक सूक्ष्म प्रक्रियाओंके पर्दे उठाये हैं। दैनिक जीवनकी सैकड़ों छोटी-छोटी घटनाओंके वातावरण और प्रतीकोंसे काव्य-शिल्पको समृद्धिशाली किया है। जीवन-व्यवहारकी भाषा अपनाकर काव्यकी भाषाको ताज़गी और नवीन शक्ति प्रदान की है। छन्दोंके लिए अपरिचित लय-ताल और शब्दोंके नए संगीत-सम्बन्ध वह खोज रहा है। इस अन्वेषणमें उसे हर ओर उत्कृष्ट उपलब्धि ही हुई हो ऐसा हमारा आग्रह नहीं है। जहाँ-जहाँ नहीं हुई उसकी खरी आलोचनाके हम पक्षपाती हैं। पर अन्वेषणकी यह प्यास,

क्रिया और काव्यकी सीमाओंको व्यापक करनेका उद्देश्य सिद्धान्ततः स्तुत्य है। उससे हमारी कविताकी शक्ति बढ़ रही है, वह अधिकाधिक व्यापकता प्राप्त करती जा रही है, यह कोई छोटी बात नहीं है। आज चाहे हम इस व्यापकताके श्रेष्ठ उदाहरण नई कवितासे कम ही दे पायें और बहुतसे कृतित्वकी हमें भर्त्सना भी करनी पड़े, पर इसका यह अर्थ नहीं कि नई पीढ़ीको जो कुछ थोड़ा-बहुत देना था वह उसने दे दिया, अब नया काव्य उससे आगे न जायगा और जो दुर्बलताएँ आज हैं वह नहीं हटेंगी। हमारे अन्वेषण अब उस बिंदु पर पहुँच चुके हैं कि अब उनकी वर्तमान दुर्बलताओंको प्रयत्नपूर्वक हटाया जाना चाहिए। जो कसर है उसकी पूर्ति की जानी चाहिए। उदाहरणके लिए पिछली पंद्रह वर्षकी कवितामें आजतक कोई बृहत्काव्य या प्रबंध नहीं लिखा गया जब कि छायावाद भी कम-से-कम एक बड़े काव्यका दावा कर सकता है। नये कविके लिए अपनी समस्त अनुभूति और प्रेरणा-पूंजी लेकर इस दिशामें अग्रसर होना चाहिए। छन्दोंकी अराजकता और विशृंखलताको उलझे-सुलझे तर्कोंसे सिद्ध करनेके स्थानपर उन्हें नई गठन और व्यवस्थाकी ओर उन्मुख करना चाहिए। छन्दोंमें जो नई संगीत-गतियाँ आई हैं या जिन छन्द-प्रयोगोंमें ऐसी संभावनाएं हैं कि उनके आधार पर नये सुगठित छन्द निर्मित किये जा सकते हैं उनका वर्गीकरण किया जाना आवश्यक है जिससे आगे उनका संस्कार और विकास किया जा सके। अध्ययन या अनुभवकी कमीके कारण यदि छन्दोंमें भूलें हैं तो उन भूलोंको नया प्रयोग या विशेष वर्गके पाठकोंकी चीज़ कहकर रेशनेलाइज़ नहीं करना चाहिए। यदि दृष्टिकोण या विचारादर्शोंमें स्पष्टता नहीं है तो उसे अपना नवीन दर्शन कहनेका दुःसाहस करना कोई ज़रूरी नहीं है। अपना विश्लेषण, स्व-आलोचन किया जाय, निर्ममतासे यह देखा जाय कि हमारी मानसिक पूंजी क्या है और हमारी विचार-प्रक्रियाका क्या स्वरूप है।

सारांशमें नई कविताकी यही समस्याएँ और समाधान-दिशाएँ हैं।

प्रस्तुत कवितासंग्रहका यह दावा तो नहीं है कि नई काव्यधाराका वही एकमात्र सफल उदाहरण है, उसका इतना निवेदन अवश्य है कि उसके कविने

नई धाराओं–शैलियोंके स्वस्थ तत्त्वोंका समन्वय करनेकी अथक चेष्टा की है।

इस पुस्तककी रचनाओंको तीन मुख्य विभागोंमें रखकर देखा जा सकता है। एक तो रूमानी गीतात्मकता, दूसरे यथार्थ और रूमानका समन्वय, तीसरे मानववादी बहिर्मुख भावधारा।

तीनों पक्षोंमें शिल्पके प्रयोग किये गये हैं, विशेष रूपसे उपमान, रंगयोजना और ध्वनिसंगीतके।

पिछले कवितासंग्रह "नाश और निर्माण" में सवैयेको तोड़कर एक नया मुक्त छन्द निर्मित किया था, प्रस्तुत संग्रहकी तीन रचनाओंमें नये छन्दोंका फिर निर्माण किया गया है। "शामकी धूप" में उर्दूकी छोटी बहर (यथा–**नींद क्यों रात भर नहीं आती**) को तोड़कर उसके काल-मान और लयके आधारपर नया मुक्त छन्द रचा है। इसी प्रकार "नये सालकी साँझ" का छन्द भी गज़लके काल-मानपर लिखा गया है। "चाँदनी गरबा" का छन्द एक गुजराती लोक-गीतसे लिया है जिसे गरबा नृत्यके समय गाया जाता है–

**(आशी माशे शरद पुनमनी रात जे, चांदलिया ऊग्यो रे सखि म्हारा चौक मां)**

"न्यूयार्कमें फ़ॉल" संग्रहकी एक विशेष रचना है जिसमें आधुनिक वस्तुप्रतीकोंका नया उपयोग है। शैली-शिल्पकी दृष्टिसे "याज्ञवल्क्य और गार्गी" एकालाप उल्लेख्य है। ऐसे मोनोलॉग का उपयोग हिन्दी कवितामें बहुत कम हुआ है। प्रयोगके इस वर्गमें "चन्दरिमा" भी आती है जो प्रभाववादी खंड-बिम्ब है। "सिन्धु तटकी रात" और "हेमंती पूनो" में छन्द और शब्द-योजनाकी संक्षेप-शैली (ब्रेविटी) द्रष्टव्य है। "ढाकवनी" में जहाँ एक ओर वातावरण निर्माणके लिए जनपदीय (बुन्देलखंड) उपमान, प्रतीक, और शब्दयोजनाका आधार लिया गया है वहाँ दूसरी ओर समाज-यथार्थ (सोशल रियलिज़्म) के शिल्पका प्रथम बार उपयोग किया गया है।

इन कतिपय रचनाओंका उल्लेख केवल उदाहरणार्थ किया है। संग्रह की अन्य समस्त रचनाओंका अपना अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है, जिनमें शिल्प प्रयोगोंके साथ सामाजिक वस्तुके सामंजस्यका यत्न मिलेगा और आगत फ़सल की अनिमेष प्रतीक्षा !

**– गिरिजा कुमार माथुर**

# नई भारती :

[ १५ अगस्त १९५२ ]

एशिया के कमल पर तुम भारती सी
पूर्व के जन जागरण की आरती सी
इस सदी के साथ केसर चरण धरकर
आ गईं तुम भूमि-स्वर्ग सँवारती सी
अमृत नदियों का जहाँ है सोम संगम
यह कपूरी लौ उठी उनकी मनोरम
लौट आई देश की ज्यों गंध गरिमा
चन्द्र तन, नक्षत्र मन, ले ज्ञान संयम

क्रांतिवाही यज्ञ के ज्वाला कमल पर
मुक्ति के कंचन कलश लेकर रँगीले
सोन विधुरेखामयी आईं उदित हो
तुम इरामय इंदिरा सी चारुशीले
हाथ लेकर सभ्यता का रंग-केतन
शांति की संदेश-श्री मुख पर सुशोभन
तुम बढ़ीं जनमुक्ति मंगल कामना सी
इस धरा के भाल पर बन लाल चन्दन

चीन से पाताल तक भूगोल सारा
एक संस्कृति डोर में है बाँध डाला
पूर्व-पश्चिम की समन्वय धूप सा है
आत्मा के रूप का सौरभ तुम्हारा
विश्व के रसफूल की तुम नागकेसर
तुम अजंता-रेख जनगीता नवीना
पोंछती जाओ धरा के आंसुओं को
हाथ में ले सर्व सुख की रुद्र वीणा

कोटि मनुजों में भरो छबि सभ्यता की
कोटि कंठों में बनो ध्वनि मनुजता की

# भोर : एक लैंडस्केप

[ फरवरी १९४५ ]

अविरल जलते रजनी के दीपक मंद हुए
अब ब्राह्म घड़ी का ठंडा सा आलोक जगा
भैरव के मन्द्र स्वरों के पहले कंपन सा
वे सात पहरुए उतर गये हैं पश्चिम में
ले अंधयारे का सिंहासन
हल्की हो गईं हवा की तिमिर दबी सांसें
भ्रम की स्वर्गङ्गा के निशान
जो लुप्त प्राय नक्षत्रों में हैं शेष रहे
प्रतिपल पीतल से रंग हीन होते जाते

तामस के शासन का प्रतीक
बुझता है वह अन्तिम प्रदीप
अन्तिम तारा
तम गढ़ के ढहते भारी कोट कंगूरों से

यह प्रथम प्रदोष निमिष है नये उजेले का
जीवन के नये जागरण का
अब युग की अंधयारी रजनी मिटने को है
जनरवि का अग्र प्रकाश-चरण
अंकित हो रहा धरा के मैले आंचल पर
जिसमें मानवता छिपी धूप बन सोती है।

## लैंडस्केप:

[ मार्च १९४५ ]

ये धूसर, सांवर, मटयाली, काली धरती
फैली है कोसों आसमान के घेरे में
रूखों छाये नालों के हैं तिरछे ढलान
फिर हरे भरे लंबे चढ़ाव
झरबेरी, ढाक, कास से पूरित टीलों तक
जिनके पीछे छिप जाती है
गढ़बाटों की रेखा गहरी
ये सोंधी घास ढकी रूंदें
हैं धूप बुझी हारें भूरी
सूनी सूनी उन चरगाहों के पार कहीं
धुंधली छाया बन चली गई है
पांत दूर के पेड़ों की
उन तालवृक्ष के झौंरों के आगे दिखती
नीली पहाड़ियों की झांईं
जो लटें पसारे हुए जंगलों से मिलकर
है एक हुई

यह चित्रमयी धरती फैली है कोसों तक
जिसके वन-पेड़ों के ऊपर
नीमों, आमों, वट, पीपल पर

निखरे निखरे मौसम आते
कच्ची मिट्टी के गावों पर
भर जाते खेरे और खेत
फिर रंग बिरंगी फसलों से
जिनमें सूरज की धूप दूध बन रम जाती
हर दाने में रच जाता अमरित चंदा का

इस धूसर, सांवर धरती की सौंधी उसांस
कच्ची मिट्टी का ठंडापन
मटयाला सा हल्का साया
तन मन में सांसों में छाया
जिसकी सुधि आते ही पड़ती
ऐसी ठंडक इन प्रानों में
ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है
मीठी हरियाली-खुशबू मंद हवाओं में।

# युगारम्भ :

[ १४ अप्रैल १९४६ ]

ज्योति की तरंग उठी
दूर दूर छा गई
सदियों के तिमिर पार
मानवता आ गई

युग के विराट चरण
जनपथ पर गूंजते
धरती के स्वर महान
अम्बर को चूमते

पशुबल के दीपों की
रेख पड़ी झांवरी
मिटी भयद कारा सी
कालरात्रि सांवरी

मृत्यु के निदाघ पर
जीत गई ज़िंदगी
तप्त, दग्ध भूमि हुई
हरित, पीत, संदली

यह विकास पंथ जमे
शिला-खंड घुल गये
तिमिर घिरे जन मन के
नये क्षितिज खुल गये

जीवन की गंगधार
कूल नया पा गई
सदियों के तिमिर पार
मानवता आ गई

अविरल है मंज़िल यह
है न आखिरी विराम
इस प्रशस्त मार्ग चले
देश, देश, नगर, ग्राम

मानव महान उठा
एक ज्योति ज्वार पर
उजले इतिहासों के
प्रथम सिंहद्वार पर

अपने विरोधों से
श्रांत क्लांत था समाज
उन सहस्र पापों का
जलता है नरक आज

आदम का पुत्र बहुत
भटका अंधेरों में
चंगेज़ी न्यायों के
खून भरे घेरों में

किंतु धरा मृत्युंजय
स्वर्ग नया पा गई
सदियों के तिमिर पार
मानवता आ गई।

# एशिया का जागरण :

[ २४ मई १९४६ ]

अंगार बन गया आदि पूर्व
सदियों का धुंधला जंबुद्वीप
श्यामल कृतान्तजा धरा उठी
लेकर जीवन का अग्नि दीप

शत अनल शिखाओं से उठते
सीमान्त आज देशान्तर के
भर गये दीप्ति से नगर ग्राम
जनवास दीर्घ वन-प्रान्तर के

ये परम पुरातन महादेश
आये मशाल लेकर नवीन
जव, चीन, मलय, नव हिन्दचीन
ब्रह्मा, भारत, दृढ़ फिलिस्तीन

बंदी मानवता के उर से
उठता था युग प्राचीन धुंआ
वह चिर भस्मावृत अग्निपुंज
नभगामी ज्वालासिंधु हुआ

जन-अम्बुधि की यह एक लहर
आसन्न क्रांति की दूत हुई
लो महाशक्ति युग जीवन की
जन जीवन में संभूत हुई

देशों से उठ आया निनाद
अन्तिम विराट जन-संगर का
अन्तिम अक्षर विद्रोह जगा
मनु के इस्पाती अन्तर का

हो एक प्राण, हो एक चरण
हो एक दिशा जनता निकली
इतिहास-सूर्य के अश्व मुड़े
युगजीवन ने करवट बदली

नयनों में अग्नि शिखाएं हैं
मुख पर मानवता का चंदन
जनता जनार्दन आज बढ़ी
करने आज़ादी का वंदन

हमने जीवन की ज्वाला में
है पाप जलाया सदियों का
इस महायज्ञ से निकला है
यह कुलिश नवीन अस्थियों का

मेरी मानवता पर रक्खा
गिरि सा सत्ता का सिंहासन
मेरी आत्मा पर बैठा है
विषधर सा सामंती शासन

मेरी छाती पर रखा हुआ
साम्राज्यवाद का रक्त कलश
मेरी धरती पर फैला है
मन्वन्तर बनकर मृत्यु दिवस

तेरी ज़ंजीरों में बंधकर
कंकाल हुई मेरी काया
मेरे फूलों को कुचल गई
तेरी संगीनों की छाया

वह अचल हो गया पत्थर सा
जो युग से अश्रुनिपात हुआ
मेरे मन का मानिक कंचन
गलकर कठोर इस्पात हुआ

यह वज्र इन्द्र का नहीं
कि जिससे निर्बल को आधार मिला
यह मानव का है वज्र
कि जिससे स्वर्ग सहस्रों बार मिला

यह चमक नहीं है दामिनि की
यह विद्युत शर है हाड़ों का
अब तल से मूल उखड़ता है
शोषण के श्याम पहाड़ों का

मेरी गुलाम तलवारों का
है सामूहिक संकल्प जगा
बंधन टूटे, सीमा फैली
फिर जल-प्लावन सा कल्प जगा

मेरी आंखों में ज्योति जगी
तेरी आंखों में अंधकार
तुझको मिट्टी है बना रहा
मेरी मिट्टी का बल अपार

मेरे अंतर में मान जगा
अपनी विराट संस्कृतियों का
जागी विभूति सम्राटों की
तप जागा कर्मठ यतियों का

तुझमें झनकार शृंखला की
मेरे पीछे है सामगान
मेरी आत्मा के दर्पण में
हैं खड़े बुद्ध ईसा महान

मेरी इस आदि धरा में से
निकला संस्कृति-रवि खिली धूप
मुझसे सतरँग संदेश चले
जब तेरा मन था अंधकूप

जब विश्व-सभ्यता नव शिशु थी
तब मेरे दर्शन-चाँद खिले
आदर्श महान मनुजता के
ब्रह्माण्ड-सृष्टि के भेद खुले

मेरे उजले घर में आया
तू बन अंधयारे का जाला
तूने डस लिया अजाने ही
मेरे दीपों का उजयाला

तेरे तम-सागर में डूबा
मेरे किरीट का मणि-दिनेश
ओ मनुज-राहु, तूने निगले
ये चाँद सितारों के प्रदेश

ए हिम के झंझावात
जमीं तुझमें जीवन की गंगाएं
गल गईं सुनहली फसलों-सी
सदियों की पकी सभ्यताएं

छाया वर्षों की सीलन में
ख़ूनी मकड़े जैसा प्रसार
गोधूलि धुंध में डूब गया
एशिया, ज्योति का सिंहद्वार

फिर सांसें घुटीं अंधेरे में
बंदूकों से बरसात हुई
तोपों से जो बारूद उड़ी
वह दो सदियों की रात हुई

फैलीं ज़ंजीरें नागों-सी
इन धूप भरे मैदानों में
भारी बूटों की गूंज उठी
लुटते खेतों खलिहानों में

वे मिट्टी के अविजेय दुर्ग
गढ़, कोट, हवेली, रंगमहल
वे राव- रावले सामंती
धूसर परकोटे, बुर्ज अचल

युग मटमैले तोरण फाटक
गोलों से उड़कर धूल हुए
पश्चिम की ख़ाकी आंधी में
नीवें उखड़ीं निर्मूल हुए

बिगुलों में डूब गया गर्जन
बूढ़े तैलाक्त नगाड़ों का
देसी पानी सब उतर गया
उन रत्न जड़ी तलवारों का

वे तेल फुलेलों में डूबीं
आधी बेहोश सभ्यताएं
ढह गईं काग़ज़ी महलों-सी
घुन लगी खोखली सत्ताएं

धुंधयारी लाल मशालों का
फ़ानूसों का युग बीत गया
प्राचीन अंधेरे के ऊपर
यह नया अंधेरा जीत गया

फिर रेल तार से कसी धरा
जम गये दासता के निशान
मैली फफूंद से शहर उगे
क़स्बे, व्यापारिक केन्द्र म्लान

चिकनी सड़कों के आसपास
फैलीं तमिस्र गंदी गलियां
श्री, सुख, संपदा विदेश गई
रह गईं ग़रीबी की कड़ियां

ओठों पर ठोक दिये ताले
मन के वातायन मूंद दिये
अभियान मुक्ति के तूफ़ानी
जेलों के भीतर रूंध दिये

आत्मा कूड़े का काँच बनी
मन कीच कुण्ड नाकामी का
पीढ़ी दर पीढ़ी में फैला
तिल तिल कर ज़हर ग़ुलामी का

दीं उठा भेद की दीवारें
रच धर्म, जाति, प्रांतीय-भाव
भाई से भाई लड़ा दिये
जब जब लग पाया कुटिल दांव

जन जीवन के हर पहलू में
कर दिये अनीति पिशाच खड़े
छल, कपट, द्वेष, नीचता, दग़ा
लालच, विग्रह के दैत्य बड़े

तेरे माथे है दाग़
हमारी नैतिकता की चोरी का
बन वज्र गिरेगा पाप
युगों की तेरी आदमख़ोरी का

तेरे सिर पर बन मृत्यु पुंज
इंसानी दर्द बोलता है
काली दीवारें उखड़ रहीं
ध्रुव आसन आज डोलता है

वे रक्त-यंत्र उत्पीड़न के
तेरे, तुझको ही काल बने
जो जाल बिछाये थे तूने
तुझको डसने को व्याल बने

घर, नगर, ग्राम, वन, सिंधु बीच
मेरी धरती ललकार रही
मानवता की यह क्रुद्ध आग
दिशि दिशि से तुझे पुकार रही

ओ मनुज दासता के प्रहरी
यह देख दुर्ग जलता तेरा
धू धू जलते हैं अस्त्र शस्त्र
जलकर गिरता जंगी घेरा

मुड़ गये समय के चपल चरण
आया कृतान्त बन मुक्ति काल
मिट्टी का हर कन सुलग उठा
जल उठी एशिया की मशाल !

# पहिये :

[नवम्बर १९४६]

ये घूम रहे हैं जीवन के पहिये महान
नभ में ये सूरज, चांद, सितारों के पहिये
घूमा करते विश्रांति हीन
नीचे धरती का चक्र चला करता अविरल
जिसके रंगीन दायरे में आतीं ऋतुएं
फल, फूल, फसल की बांध करधनी चमकीली
दिन रात गोल बांधे आते
दैनिक जीवन का क्रम बनता समाप्त होता
फिर नये बिन्दु से चल पड़ता
पहियों के अविरल मंडल में

युग युग से जीवन चक्र चल रहा इसी तरह
इस आवर्तन में दुनियां की
सदियों लम्बी गतिवान मंज़िलें पार हुईं
ये पहिये हैं आधार सभ्यता संस्कृति के
प्रस्तर युग से जो ले आये हैं ऐटम तक
इस दुनियां का कारवां अमर
ये रुके नहीं पथ के ऊपर

मिट्टी को विकसित कर लाये
आनेवाले सामाजिक समता फूलों में

ये शक्तिवान मेहनत की बांहों के प्रतीक
उन रूखे भारी हाथों के गतिमान चित्र
गढ़ते जाते हैं जो सामाजिक मूरत को
जीवन की मिट्टी को सँवार
सच्चे कर देते हैं सपने
लेते हैं स्वर्ग उतार विचारों के नभ से

इन पहियों की छायाओं में
दिखती हैं कितने युग की तसवीरें विराट
वे आरंभिक कृषि-युग की गाड़ी के चक्के
स्वर्णिम गेहूं जौ के बोझों से दबे हुए
वे यात्रा के अलसित साधन
धीरज साहस के सबसे बूढ़े विजय चिह्न
वह पथ में पंक्ति बांध बढ़ते रथ चक्रवान
सामंती युग के प्रारंभिक गौरव निशान
वे अर्धचन्द्र धनु, प्रत्यंचा, तूणीर, तीर
घन वज्र, कुठार, खंग, मारक आयुध अधीर

बढ़ती जाती है दृष्टि और सदियों आगे
वह अर्ध ज्ञानमय अंधयारे जग का आंगन

अधिकारहीन धरती का पुत्र निरीह नयन
कर बांधे, अपलक दृष्टि, खड़ा जो पैरों में
उन दैवी सम्राटों के सिंहासन नीचे
फिर दिखते हैं वे दुर्ग, बुर्ज, गोलार्ध भीम
अत्याचारों के लौह कवच
सीज़र की असि-गूंजों से ले क्रूसेडों तक
नीरो, चंगेज़ों, तैमूरों के अट्टहास
उठकर सहसा हैं आ जाते
फिर बुझ जाते हैं काल-चक्र की घूमों में

दिखती हैं सदियों के पथ में
काई से काली चट्टानों सी दीवारें
वह क़त्लगाह, तहख़ाने जिनमें क़ैद रही
सदियों तक गूंगी मानवता
मिट्टी के टीले सी मृत बारूदी ढेरी
जो पहिली ही चिनगारी में
ले उड़ी खंड खंड करके
कितने भीषण बेस्टीलों को
वह मध्यवर्ग की महाक्रांति का लाल धुंध ·
वह वक्र दरातों की पातें
वह गिलोटीन के दुर्दम रक्त रंगे पहिये
दिन रात चले जो क्रुद्ध मनुजता के कर से

खूनी बदला लेने पिछले सब खूनों का
कर ध्वस्त नष्ट सामंतवाद का रक्त महल

अब बढ़ता है सामाजिक चक्र और आगे
युग में है दिखने लगा गैस का उजयाला
चल पड़े भाप से नई मशीनों के पहिये
बन यंत्रक्रांति के अग्रदूत
मानव की प्रकृति विजय का पहला सूत्रपात
लोहे की विजय वनस्पति पर
ईश्वर पर पहली विजय
चिरंतन मिट्टी की

फिर 'खुल सुम-सुम' जैसे मिल गये विकास सूत्र
खुल सके सृष्टि के वे रहस्यमय बंद द्वार
इन डोरों में बंध गई धरा
फिर नई शक्ति का यंत्र उठा
उद्योग और व्यापारों का फैला प्रसार
पूंजी की कंचन बेल बढ़ी
देशों की सीमाएं सिमटीं
आरंभ हो गई दौड़ नये बाज़ारों की
अंधी लिप्सा वह उपनिवेश हथियाने की
चढ़ चले जीतने सिंधु भयंकर स्टीमर
बारूद और गोलों के ले काले पहाड़

जल-थल के कोने कोने में
फैलाने संगीनों से अपना सामराज

गति चक्र बढ़ चला और दूर
कस गई ग़ुलामी से सारी प्राचीन धरा
मानवता की गर्दन में पड़ीं नई गांठें
आविष्कारों के सुख साधन
सब अस्त्र बन गये शोषण के
साम्राज्यवाद के हाथों में

पर परिवर्तन का तेज़ चक्र बढ़ता आगे
है धार काटती नागपाश
बस इसीलिए होगा विनाश
मानव का मानव पर
दुख, दोहन, अनाचार
इसलिए कि रुकता नहीं कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
वह पास लिये आता है मनुज समाज नया
जब दुख की सत्ता मर जाएगी
पीले बासी फूलों सी।

# प्रौढ़ रोमांस :

[२३ जनवरी १९४७]

मेरे विरही युवा मित्रवर
तुम जिस दुख से परेशान हो
वह सचमुच है दुःख नहीं कोई जीवन में
असली दुख हैं और बहुत से
तुम जिसको हो समझ रहे भारी पहाड़ सा
वह तो काग़ज़ सा हल्का है
आज दे रहे हो जिसको इतना महत्त्व तुम
वह कल ही फीका मज़ाक बन रह जाएगा
ज्यों दुहराई बात रोज़ की
यह रह रह कर निकल रहीं जो ठंडी सांसें
यह हवाइयां मुँह के ऊपर
उड़ी उड़ी बातें हताश सी
खोई खोई चाल, और
बेहोश आदमी जैसे कामकाज दिन भर के
यह सब क्या है
यह कैसा है अजब तमाशा
मैं इन सारी बातों को हूँ ख़ूब समझता
बड़े बड़े इस प्रणय-काल के आदर्शों को

पर मुझको है पता
कि बिछुड़न की इन तीखी पीड़ाओं में
ऊँचे ऊँचे आदर्शों की इन बातों में
छिपा हुआ है भेद कौन सा
तुम इस जीवन का निचोड़ जिसको कहते हो
वह सारा वेदान्त फ़लसफ़ा
काव्य कला की मधुर कल्पना
केवल शारीरिक है
आज नहीं मानोगे तुम मेरी बातों को
नीरस सीख कहोगे जिनको
पर अपनी खिल्ली कल तुम्हीं उड़ाओगे
जब दैनिक जीवन की भट्टी में
गल जाएंगे खोटे सिक्के सारे मन के
तब जानोगे इन आदर्शों की सच्चाई

हमने भी सोचा था पहले
इस जीवन में
सबसे अधिक मूल्य होता कोमल भावों का
पर ठोकर पर ठोकर खाकर हमने जाना
तोल तराज़ू के पलड़ों में
मन के संघर्षों से बाहर के संघर्ष
अधिक बोझल हैं

और हृदय की कलियां खिलती देखीं
रुपयों की पूनो में
और प्यार के चाँद बुझ गये
जीवन की सड़कों पर आकर

हमको भी है ज्ञान विरह का
और मिलन का
यह मत समझो बरफ़ बन गया हृदय हमारा
या कालान्तर में पथराये भाव हमारे
या हमको है नहीं किसी की याद सताती
पर वह तुमसे बहुत भिन्न है
हम मन में सुधि रखकर भी
हैं कर्मशील
हैं संघर्षों में डूबे भूले
हम डटकर जीवन से युद्ध कर रहे प्रतिपल
आज हमारे संमुख और समस्याएं हैं
प्रश्न दूसरे
घर के, बाहर के, समाज के
मुल्क और दीगर मुल्कों के

अब हमको सुधि की पीड़ा है नहीं सताती
केवल ध्यान यही आता है
आज न बच्चे घर में हैं कूड़ा करने को

खूब सफ़ाई है आँगन, छत पर, कमरों में
पर कुछ खाली खाली सी है
आज नहीं अच्छी लगती यह
आज न फैले जगह जगह टीन के डिब्बे
सिगरेटों के ख़ाली पैकेट
चिंदी किये हुये काग़ज़
पन्नी दांतों से चबी चबाई
लकड़ी खोखे काठ कठम्बर
दिन भर के दंगों की पीछे छुटी गवाही
नहीं आज है
पहले इस कूड़े करकट से
मन में झुंझलाहट होती थी
आज वही बच्चों का कूड़ा याद आ रहा

और याद यह आता संध्या की बेला में
यह एकांत मकान
और उजली बांहों सी यह दीवारें
नहीं समेट पा रहीं मुझको
और न दिन भर की थकान को मिटा रही हैं
निस्संकोच लिटाकर अपनी
छत सी खुली हुई छाती पर

यह सब—
और बहुत सी बातें मन में आतीं
पर इनसे मन बोझल आज नहीं होता है
और न मुँह पर छांह उदासी की आती है
और न लगते दिन निराश
रातें मटमैली
क्योंकि बड़ी भोली मिठास की सुधियां हैं ये
जीवन के मासूम सुखों की
तन के मन के स्वस्थ चैन की
जिनकी उजली उजली छापें
खिंची हुई हैं स्वस्तिक सी कोने कोने में

और क्योंकि हमने भुज बल से
अपना मार्ग प्रशस्त बनाया
दुःखों से कर युद्ध
परिस्थितियों से लड़कर
और जूझकर भारी से भारी अंधड़ से
अपना ऊँचा सिर न झुकाकर
केवल मिथ्या आदर्शों से नहीं
नहीं कोरी रंगीन कल्पनाओं से
किंतु ज़िंदगी की मिठास का रस लेने को
हमने कटुता से खुलकर संघर्ष किया है।

# शाम की धूप :

[१६ फरवरी १९४७]

चल पड़ी तेज़ हवा
बदल गया मौसम
आ गई धूप में कुछ गरमाई
बढ़ गया दिन का उजेला रस्ता
जिसपै सूरज के चमकते पहिये
शाम को देर तक चले जाते

ये हवा धूप-मिली
लहर सी आके लिपट जाती है
कभी हल्के से उड़ा देती बाल
कभी छत पर बैठी ललनाओं के
सोंधे तन-गंध भरे आंचल को
गोरे कंधे से उड़ा देती है

और उड़ जाते सूखते कपड़े
ऊँची सीमेंट की मुंडेरों से
छोटे कुर्ते, रुमाल, टेबिल-क्लाथ
छींट की फ्राक, रेशमी जम्पर
साड़ियां बुँदकियों लहरियों की
और ब्लाउज़ महीन चटकीले

जिनमें थे पड़ गये पहिनने से
चिह्न रंगीन गठे अंगों के
सभी कोमल-कठोर उतार चढ़ाव

ये जो अपने में समेटे रहते
घर की उस धूप को, किरन तन को
ये हैं रंगीन लहरते केतन
उस पवित्र चैन के, निश्छल सुख के
अन्त में जीत ही जो जाता है
रोज़ के मानवी संघर्षों पर

पड़ गई मंद हवा
हो गई सुनहरी धूप
पेड़ के पास सूर्य जा पहुँचा
जिससे पत्तों का रंग लाल हुआ
शाम का झुटपुटा सा होता है
दूर पर छै की गजर डूब रही
छतों पर ऊँचे टीन के पाइप
और उन घर की चिमनियों में से
उठ रहा है वह ताज़ा हल्का धुंआ
लिये हल्दी की, प्याज़ की खुशबू
ताज़ी तरकारियों के छुकने की
उस धुंऐं में ही मिलके आती है

उन चपल चूड़ियों की भी आवाज़
सांवले-गोरे गोल हाथों में
बज रही हैं जो तेज़ चलने से
क्योंकि अब बन्द हो गये दफ़्तर
काम के केन्द्र कारख़ाने भी
और घर लौटने लगे पंछी
जा रहे काग भी बसेरे को

और सड़कों पै लौटता है शोर
तीसरे पहर के सुनसान को तोड़
कंकरीटों पै बूट धूल भरे
गूँजते अनमिली आवाज़ के साथ
जो मिली ध्वनि से है ज़्यादा मीठी
घंटियां बज रही हैं रिक्शों की
बीसियों साइकिलों की पांतें
कैरियर, टोकरी या हैंडिल में
कुछ के ख़ाली कटोरदान बंधे
कुछ में हैं फाइलें हर छिन भूखी
जो न कभी ख़त्म हुईं दफ़्तर में

हैं ज़रा कम ही टोकरी ऐसी
जिनमें आते हैं मौसमी फल-फूल
या कि फुटपाथ पर बिकती चीज़ें

मूँगफलियां, गरी, केले, अमरूद
या डबल रोटी, केक, 'बन', बिस्कुट
'चीज़', टिन फ्रूट, सिरप या सिरके
ऐसी क़िस्मत की टोकरी कम हैं

वर्ना अक्सर ये हैं ख़ाली आतीं
बहुत हुआ तो इश्तिहार नई पिक्चर का
या सुबह का मुड़ा हुआ अख़बार
या कोई सस्ती सी कहानी की किताब
जो किसी दोस्त ने ख़रीदी थी
ये ही क़िस्मत में हैं इस टोकरी के

किंतु इसका है ग़म नहीं कुछ भी
बन गया जब अभाव ही जीवन
छिन्न हैं जब समाज के सब तार
मानवी बंधनों की टूट गईं हैं कड़ियां
ज़िंदगी का बहाव बन्द हुआ
एकरस धार रुकी, न्यून हुई, सूख गई
क्योंकि उद्गम ही कट गया उसका

आज पग पग पै क्लेश कठिनाई
घर से खलिहान तक है अन्न नहीं
कारख़ानों से लेके बस्ती तक

है न कपड़ा कहीं पहिनने को
दूध घी का यहां पै चर्चा क्या
जब न चीनी, न गुड़, न दाल-नमक
हो गया स्वप्न किरासिन का तेल
इनका अब ख्याल है इतिहास की बात
बढ़ रहा नित नया उलझाव घना
ज़िंदगी पर यह शिकंजा दिन दिन
होरहा और कड़ा और कठिन
संकटों की यह मौत सी छाया
आ गई और अधिक नीचे तक
चाहती आंख बचाकर डसना
उन घरेलू अंगीठियों की आग
रोज़ का चैन उजेला घर का
यानी बुनियाद तक ही ज़िंदगी की

आज इंसान हो गया है क़ैद
पर न मन हार मान सकता है
क्योंकि विश्राम की इस बेला में
यह थकी, अनमनी, सुनहरी धूप
दिन के संघर्ष से जो तप तप कर
उजले सोने सी निखर आई है
सांझ की मीठी बांह चाहती है

घर के उस फूल पर ये मन की बूंद
ठहरना चाहती सुधबुध खोकर
जिससे उतरे थकान तन मन की
डूबकर रात की मिठासों में
जब उगे शाम का पहला तारा
और जब जल चुकें दीपक रंगीन
ज़िंदगी सिंक के ताज़ा फूल बने
घर के मृदु वक्ष की गरमाई में !

# दो चित्र :

[मई १९४७]

दो चित्र सदा मेरी आंखों में आते हैं

. एक :

पूरब की धरती का अंतिम पच्छिमी छोर
वह रुक्ष धरा जिसमें सदियों का खार बिंधा
भूमध्यसिंधु का मकर जिसे खाया करता
वह अग्नि-भूमि ऊसर, निर्जन
रेगिस्तानों से तपी
खजूरों से छाई
जिसके अंतर की महाधातु बाहर आती
है, गरम तेल के सोतों से
उस धरती पर है एक युगों से क्रास गड़ा
ऐसी लकड़ी का
जिसे समय का दीमक काट नहीं पाया
भूमध्यसिंधु के पानी में
पड़ती विशाल जिसकी छाया
वे एक सीध में खिंची हुई लंबी बाहें
खूनी कीलों से जड़ी हुईं

मुख की मुद्रा विश्रांत मौन
सिर एक ओर को झुका हुआ
नीचे हैं पतले पैर साथ में बंधे हुए

यह दो हज़ार वर्षों की छांह हवाओं में
अब धुंधली पड़ती जाती है
इसलिए कि जो इंसान चढ़ा था सूली पर
वह ज़िंदा होता जाता है इंसानों में

: दो :

पूरब की धरती का वह सूरजमुखी छोर
सबसे पहले की धूप-रची क्वांरी मिट्टी
जिसके चरणों में तीन सिंधु हैं डूब रहे
पाकर तलुओं की शीतलता
वह नदियों, गिरि, वन, मैदानों की श्याम धरा
गेहूं की हरी बाल जैसी
केसर सी मृदु, हीरे सी दृढ़
ऋतुओं की फसलों सी सुन्दर
गंगा सा अंतर धीरवान
यद्यपि विन्ध्या की चट्टानों सा है कठोर

वह धरती भी है चढ़ी युगों से सूली पर
हैं खिंची हिमालय सी बांहें

दोनों हथेलियां जड़ी हुईं
साम्राज्यवाद की मुहर लगी दो कीलों से
हैं पर्वत चरण बंधे नीचे
मुख की मुद्रा है मौन
किंतु आँखों में आग धधकती है
हैं कसे धनुष से वक्र ओंठ
पर आँखों में आग्नेय बान खिंचता जाता

यह फैल रही है छाया सभी दिशाओं में
ज्यों धुँआ फैलता भीम हवा के झोंके से
मिटने से कुछ घड़ियां पहिले
इसलिए कि जो इंसान मिला था मिट्टी में
वह मिट्टी का तूफ़ान उठाता आता है।

# महाकवि :

[ निरालाजीके प्रति ]

[जुलाई १९४७]

तुम कालिदास, तुलसी, रवीन्द्र
के अमर चरण चिह्नों पर रखकर चरण चले
ओ महाकाय, रवि की अविलंब विमल गति से
आजानु करों से घेर लिया
तुमने कविता का फुल्ल कमल
पंखुरियों पर निज गीतों के अंकन उतार
उन लम्बी किरन उँगलियों से
जिनके चलने की छाया में
थीं डूब गईं हो मूर्तिमान
सब भाव भंगिमाएं रंगीन अजन्ता की

प्राचीन तपोवन की सारी सुधियाँ उठतीं
ऋषियों की कांतिमयी विराट तन-छायाएं
वे यज्ञ-धूम से मंथर उड़ते केश पुंज
ऋजु कुटिल लटें
धूर्ज्जटी सदृश
आवर्तित चौड़े कंधों पर
जो भार वहन करते थे युग परिवर्तन का

लम्बी पलकें रक्ताभ नयन
रंजित था जिनमें लाल गुलाबों का अंजन
छाई थी जिनमें प्रज्ञा की निरुपम प्रशांति
तेजस अंतर की चेतनता
विमलांग शरद की गहन गँभीरा झीलों सी
सीमांतमयी सीमा विहीन
उस ध्यान मग्न वंकिम भ्रूरेखा मंडल में
राकेश बिम्ब से उदित हुए
कितने दूरागत सपनों के सुंदर रहस्य
कितने अनादि सत्यादर्शों के
आदि महद सौंदर्य-रूप
विश्वानुभूति के जिन उजयाले घेरों में
नूतन विचार के धुंधले मंदे क्षितिज खुले
खुल गये कल्पना के दिगंत
खिल गये हिमजमे भाषा के केसर प्रांतर

गंगा तट का वह पांडुवर्ण मंगल प्रदेश
सदियों पहले के मंत्रपूत रजकण जिसके
उस मिट्टी में से उठी एक ज्योतिर्रेखा
जो खिची रही मुक्ताओं, फूलों, तारों तक
जिसके रंगों में रची हुई थी ग्राम-धूप

खेतों की उजली विशद प्रभा
जो रंगभवन की आभाएं अनुरंजित कर
जन जन के मन में बनी क्रांति की चिनगारी

ओ शक्तिदूत, युग के विद्रोही कलाकार
तुम बढ़े रुढ़िगत भावों की प्राचीर तोड़
भीषण अवरोधों की चट्टानों के ऊपर
निर्माण पंथ बन गया धीर पद चिह्नों से
इन नई मुक्त सीमाओं पर निर्बाध बही
युग की पुंजित गति सी कविता की भगीरथी
कर मंत्रमुग्ध अनुसरण तुम्हारे चरणों का
कवि अम्बु, तुम्हारी स्वर-डोरी का संबल ले
नव मानवता आ गई क्रांति के सिंह द्वार
निज काले कर्मों से था जो पंकिल समाज
जिसके पापों से संतापित तुम रहे
किन्तु, जिन क्रूर शक्तियों से तुम जूझे जीवन भर
उन महलों के दीपक अब बुझते जाते हैं
गिरता है उस समाज का अब विक्षत खंडहर।

# पन्द्रह अगस्त :

[१५ अगस्त १९४७]

आज जीत की रात
पहरुए, सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना

प्रथम चरण है नये स्वर्ग का
है मंज़िल का छोर
इस जन-मंथन से उठ आई
पहली रत्न हिलोर
अभी शेष है पूरी होना
जीवन मुक्ता डोर
क्योंकि नहीं मिट पाई दुख की
विगत सांवली कोर

ले युग की पतवार
बने अंबुधि महान रहना
पहरुए, सावधान रहना

विषम शृंखलाएं टूटी हैं
खुलीं समस्त दिशाएं

आज प्रभंजन बनकर चलतीं
युग बंदिनी हवाएं
प्रश्नचिह्न बन खड़ी हो गईं
यह सिमटी सीमाएं
आज पुराने सिंहासन की
टूट रहीं प्रतिमाएं

उठता है तूफान, इंदु तुम
दीप्तिमान रहना
पहरुए, सावधान रहना

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज
कमज़ोर हमारा घर है
किंतु आ रही नई ज़िंदगी
यह विश्वास अमर है

जनगंगा में ज्वार,
लहर तुम प्रवहमान रहना
पहरुए, सावधान रहना !

# सावन के बादल :

[अगस्त १९४७]

काले अगरु से उठे आज बादल

ये मिट्टी की गंध से सोंधी हवाएं
ये जामुन के रंग सी नीली घटाएं
उड़ी आ रही हैं लहर सी फुहारें
उमगते उरज मेघमाती भुजाएं

खुलीं फूल बाहें हटे लाज आंचल
काले अगरु से उठे आज बादल

नहाकर वनस्पति हुई ऋतुमती सी
नितम्बिनि धरा ज्यों कुंवरि रसवती सी
नवोढ़ा नदी ने नवल अंग खोले
सजी दीपतन की मिलन आरती सी

उठे नैन लालिम हंसी रेख काजल
काले अगरु से उठे आज बादल

चमक बिजलियों की पलक-चांदनी सी
खुले चाँद तन की झलक दामिनी सी
झुके मेघ गीले अधर ज्यों झुके हों
लिपटती हवा मस्त गजगामिनी सी

वियोगी, मिलन याद में दुख भुला चल
काले अगरु से उठे आज बादल

# नई दिवाली :

[१५ अक्टूबर १९४७]

कातिक का रसवान महीना
धरती फूली-फाली
ठंडी मिट्टी पर खिल आई
दीपक सुमन दिवाली
गृह-लक्ष्मी सी सांझ खड़ी है
पीत किरन तन वाली
जला दीप से दीप
चमक से भरी धरा की थाली

कुंकुम बंदन वार बँधे
यह नया मुक्ति का द्वार है
यह स्वतंत्र भारत का पहला
दीपों का त्यौहार है

आज सांवली संध्या की
रंगीन हुई परछाईं
धरती के चित्रित प्रकाश की
पड़ती नभ तक झाईं
नये देश के नगर, ग्राम, गृह

हुए स्वच्छ चमकीले
आज़ादी के स्वर्ण शस्य से
घर आंगन हों पीले

धूप उगे, फसलें फूलें
अक्षय सुख का भंडार हो
जले निरंतर दीप
नित्य ही दीपों का त्यौहार हो

ले वैभव का धान्य
महालक्ष्मी घर-घर में उतरे
ऋद्धि सिद्धि से भरें ग्राम
नगरों में श्री सुख बिखरे
मेरी इस सांवर धरती पर
सोना चांदी बरसे
ऐसा दीपक जले कि जिससे
स्वर्ग धरा को तरसे

इस लौ में दारिद्र्य जले
ज्यों जले अंधेरा रात का
जन जन का जीवन खिले
ज्यों पहला फूल प्रभात का।

## सायंकाल :

[३० जनवरी १९४८]

सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ
काल पुरुष मिट गया, धरा का सूना भाल हुआ

आदि ज्योति उठ गई आज
मिट्टी के घेरे पार
युग की अक्षय आत्मा सिमटी
बनी एक चीत्कार
आज समय के चरण रुक गये
हुई प्रलय की हार
महा पूर्णता मानवता की
छोड़ गई संसार

मरकर मानव अमर बना लघुरूप विशाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

रुग्ण धरा पर जमी हुईं थीं
सदियां बन प्राचीर
मानवता पर कसीं युगों से
पापों की ज़ंजीर

ईसा, बुद्ध खड़े नतशिर
थी खिंचीं शक्ति शमशीर
तुमने धरती के माथे से
पोंछी रक्त लकीर

मृत प्रतिमा जागीं, जीवित जग का कंकाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

एक अशेष दुखद सपने सा
उलझा था संसार
दिन में जले दीप सा जीवन
हत चेतन निस्सार
मिट्टी की चिर सृजन-शक्ति का
ले विराट आधार
तुम हर कन से उठा सके
मानवता के अवतार

पथ की हर पदचाप क्रांति, हर चिह्न मशाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

थकी ज्योति का तिमिर ग्रसित
संघर्ष हुआ गतिवान
इतिहासों के अंधकार से
उठ आया इंसान

हार गई आत्मा पर आकर
पशुता की चट्टान
कष्टों से पंकिल मानवता
उठी बनी हिमवान

जनता हुई अजेय नया जीवन जयमाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

किंतु तिमिर फिर उभरा
करने अंतिम अस्त्र प्रहार
धर्म, जाति, हिंसा की लेकर
तक्षक सी तल्वार
मनुज जला, शैतान उठा
देवत्व हो गया क्षार
साम्राजी बीजों से ऊगे
शस्त्र समान विचार

अंतिम आहुति पूर्ण हुई अंतिम कर लाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

सहसा विष के दीप बुझ गये
बुझे गरल तूफ़ान
भस्म हुआ तम, कर प्रकाश की
रक्त-अग्नि का पान

तप में रची हड्डियों से
जन वज्र हुआ निर्माण
मिट्टी नवयुग, तन का हर कन
रवि की नई उठान

तुमने मर कर मृत्यु मिटा दी विश्व निहाल हुआ
सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ

[बापू के निधन पर]

# बरफ़ का चिराग़ :

[६ मार्च १९४८]

हिम के सफ़ेद दीपक की लौ अब हुई लाल
सदियों से जमी हुई मिट्टी बन गई ज्वाल

यह कमल धरा का बरफ़ीला
यह झील कटोरा चमकीला
ठंडे खेतों का कुसुम बदन
केसर की झाँईं से पीला
लालिम चिनार के पेड़
घाटियों के प्रहरी
नभ के पर्दे पर
रेखा-छांह छपी गहरी

उठ रहीं शैल मालाएँ
सदियों से जवान
हर मंज़िल खिंची हुई है
फूलों की कमान

गोरे मुख पर उड़ता है
हल्का पवन चीर

है स्वर्ग एक कल्पना
सत्य है काश्मीर

सूरज सोने का फूल
चाँद हिम का चिराग़
उस दूध धुली मिट्टी से
अब उठ रही आग

बनकर शमशीर उठी जनता
बजता परबत का नक्क़ारा
नदियाँ बिजली बन उतर पड़ीं
हो गया लाल ध्रुव का तारा

धरती के यह जन-फूल उठे बनकर मशाल
हिम के सफ़ेद दीपक की लौ अब हुई लाल

इन चंदन की सीमाओं में
आ गया एक दुर्धर्ष नाग
पड़ गया बरफ़ के आंचल पर
मासूम खून का लाल दाग़
यह महादेश का शुभ्र कलश
लहराया इस पर नव केतन
जो जीवन मृत केंचुल सा था
वह आँखें खोल हुआ चेतन

गिरि में निमग्न मनु की आत्मा
जब उठ आई कर सिंहनाद
पथ की रज लेने उतर पड़ा
सिंहासन से सामंतवाद

आघात हुआ यह
अचल हिमाचल के तन पर
जन उन्नायक प्रलयंकर
शंकर के मन पर

जो अग्नि ला रही है जग में
नूतन कृतांत
वह कर देगी यह विष भी
भस्मीभूत शांत

बस इसीलिए झुक सका नहीं यह दग्ध भाल
हिम के सफ़ेद दीपक की लौ अब हुई लाल।

# आग और फूल :

[ मई १९४८ ]

निकलती ही जा रहीं घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण को
ग्रीष्म के उस फूल सी
जिसकी नई केसर हवा ने सोख ली
वह आग की पीली शिखा
नीले धुएँ की धारियाँ घेरे रहीं
जिसके प्रथम आलोक को
सीमांत में जिसके रहे
पर्वत अंधेरे के खड़े
सुनसान की आवाज़
आती ही रही नेपथ्य से
जो निगल जाना चाहती थी
ज़िंदगी के गीत को

ज्वालामुखी के द्वीप सा
संघर्ष का यह लोक है
हिलती हुई धरती यहाँ
हिलते हुए आधार हैं
कमज़ोर मिट्टी की जड़ें

जमकर न जम पातीं कभी
उठते बगूले दर्द के दुख के यहाँ
हर लहर पर आते नये भूचाल हैं
उजड़ा पड़ा यह द्वीप बिकनी की तरह
फिर फिर सदा
संघर्ष का अणुबम यहाँ जाँचा गया

यह व्यक्ति और समाज का
उत्तप्त मंथन काल है
संक्रांति की घड़ियाँ बनी हैं शृङ्खला
बंदी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं
है फेन विष का फैलता ही जा रहा
अब डूबता अंतिम ग्रहण की छाँह में
आलोकहत नक्षत्र मिट्टी से बना
जिसका कि पृथ्वी नाम है

बस इसलिए उजड़ी धरा
यह फूल सूखा ही खिला
केसर बिना
वह आग की पीली शिखा
धुँधली रही, मंदी रही
उज्ज्वल न पूरी परिधि को जो कर सकी

वह भस्म कर पाई नहीं
नीले धुएँ को व्योम से

वह भूमि किंतु न मिट सकी
आगत फ़सल की राह में
वह फूल मुरझाया नहीं
ऋतु रंग लाने के अमर विश्वास में
वह आग की पीली शिखा
उठती रही जलती रही
आलोक कन तम से बचा
वह अग्नि बीजों को सतत बोती रही
फिर से नया सूरज उगाने के लिए

# रात हेमंत की :

[२ जनवरी १९४९]

कामिनी सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की
दीप-तन बन ऊष्म करने
सेज अपने कंत की

नयन लालिम स्नेह दीपित
भुज मिलन तन-गंध सुरभित
उस नुकीले वक्ष की
वह छुवन, उकसन, चुभन अलसित

इस अगरु-सुधि से सलोनी हो गई है
रात यह हेमंत की
कामिनी सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की

धूप चंदन रेख सी
सल्मा-सितारा सांझ होगी
चाँदनी होगी न तपसिनि
दिन बना होगा न योगी

जब कली के खुले अंगों पर लगेगी
रंग-छाप वसंत की
कामिनी सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की

# धूप का ऊन :

[४ जनवरी १९४९]

बज रहे ठंडी सुबह के आठ
दिन भी चढ़ गया है
उतरती आती छतों से
सर्दियों की धूप
उजले ऊन की मृदु शाल पहिने
वह मुँडेरों पर ठहरकर
झाँकती है झँझरियों से
रात के धोये हुए उन आँगनों में
और अलसाये हुए
कम्बल, लिहाफ़ों, बिस्तरों पर
जो उठाये जा रहे हैं
रात की मीठी कथा के
पृष्ठ पलटे जा रहे हैं

धुले मुख सी धूप यह गृहिणी सरीखी
मंद पग धर आ गई है
चाय की लघु टेबिलों पर
कभी बनती केतली की
प्यालियों की भाप मीठी

कभी बनती स्वयं ही
रसधार ताज़े दूध की
या ढाल कर निज प्यार
वह हर वस्तु की बनती समस्त मिठास
अधरों पर पिया के

सुबह के अख़बार की वह नई ख़बरें
अब पुरानी हो गई हैं
सुर्खियों के रंग मद्धिम पड़ गये हैं
गुलभरी सिगरेट के अंतिम धुएँ से
उड़ गईं वे पताका सी सूचनाएँ
मिट गये हैं नक़्श नक़ली अक्षरों के
रह गये हैं अक्स असली सूरतों के
नित नये वक्तव्य के जो लगा चेहरे
ओढ़कर रंगीन वादों के लबादे
अक्स जिनके
शीश महलों से उतरते नित्य
ठंडे टाइपों की सीढ़ियों से
सब्ज़ बाग़ों को दिखाकर
हर ज़गह डेरा जमाते
चेतनाओं को दबाने
दूर करने दिन नई दुनियाँ नये इंसान का

बस इसलिए दिखते वही चेहरे
सदा बदरंग चेहरे
इसलिए कड़वी हुई हैं
ज़िंदगी की सब मिठासें
सर्दियों की सुबह के वह रंग
रुकते ही नहीं हैं
ऊन सी यह धूप की गरमी मुलायम
है खिला पाती न जीवन फूल को
और चौकों से उठी वह गंध सोंधी
भूख तन मन की मिटा पाती नहीं है
जल रहे हैं कोटि चूल्हे
किंतु है इंसान भूखा
जल रही है आग
फिर भी आज तक इंसान भूखा
इसलिए जलते रहेंगे
उस समय तक आग को बुझने न देंगे
आयगा जब तक न मिट्टी से उजला
सर्दियों की धूप का मृदु ऊन
फैलेगा न घर घर ।

# मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयो :

[६ अप्रैल १९५०]

चैत के अंतिम चरण की
सांझ धुँधली हो गई है
ग्रीष्म की परछाँइयों से
धूल की हल्की सफ़ेदी से गगन में
रंग मद्धिम पड़ गया है
पीत मिट्टी से बने
हल्दी रचे
गहरे सुनहले चंद्रमा का
संधि क्षण यह ऋतु मिलन का
है धरा का बदन ठंडा
चाँदनी के खुले तन पर
है न कोई वस्त्र भीतर
पहिनकर वह हवा की
बारीक लहरोंदार चूनर
दिख रही जिससे बदन की नागकेसर
उँगलियों में छुवन भरती
इस अकेले शयन गृह में
आ गई चुपचाप
जैसे पंखुरी हो मंदे झरती

आज मुझपर रंग अंकित हैं न ऋतु के
चाँदनी की कली खिलती
मुरझ जाती
साँझ जैसे फूल कितने
फूल कर कुम्हला गये हैं
मोरपंखी रात आकर निकल जाती
शीत माथे पर धरा के
हैं उदासी के धुँधलके
खोखले हैं क्षितिज दिखते
हो रहे हैं चाँद मंदे ज़िंदगी के

मौन है वातावरण
ज्यों मौन है मन
मौन है वह सिंधु स्वर मेरा पुराना
दब रही आवाज़ मन की देह की भी
इस उदासी के धुएँ में
संधि-युग के बादलों में
दब गया ध्वनि का प्रभंजन
टूटती वाणी अकेली
ज्यों अकेली लहर आकर
टूट जाती पत्थरों में

यह न युग है भावना का
स्वप्न का या कामना का
रूप रस की कल्पना का
रंग लातीं ऋतु हज़ारों
पर न धरती रंग डूबी
रसवती वह कली खिलती
किंतु लगती विरस रूखी
हैं सितारे डालते छाया सुनहरी
चाँदनी से भरी रातें
पर न लगतीं चाँदनी की
क्योंकि यह संक्रांति की वेला घिरी है
संधि-युग के पत्थरों पर
एक गहरी गूँज बनकर
उठ रहा संघर्ष का स्वर
तू धुआँ बनकर रहेगा और कब तक
एक क्षण जल जा भभक कर ।

# न्यूयार्क की एक शाम :

[अक्टूबर १९५०]

देश काल तज कर मैं आया
भूमि सिंधु के पार, सलोनी
उस मिट्टी का परस छुट गया
जैसे तेरा प्यार, सलोनी

दुनियाँ एक मिट गई, टूटे
नया खिलौना ज्यों मिट्टी का
आँसू की सी बूंद बन गया
मोती का संसार, सलोनी

स्याह सिंधु की इस रेखा पर
है झिलमिली तिलिस्मी दुनियां
हुमक उमगती याद फेन सी
छाती में हर बार, सलोनी

सभी पराया सभी अचीन्हा
रंग हज़ारों पर मन सूना
नभ-भवनों में याद आ रहे
वे कच्चे घर द्वार, सलोनी

गालों की गोराई जैसा
यह पतझर का मौसम आया
झरीं उमंगें मेपिल सी
सुख-सेब झरे छतनार, सलोनी

धन, विलास, मद, नृत्य, केलि, रस
ऋतु रोमानी तन रोमांचित
कहीं नयन मिल होते शीतल
अपने मन अंगार, सलोनी

# मैनहैटन :

[अक्टूबर १९५०]

यह पाताल
नागलोक यह
यह धरती का छोर आखिरी
कोसों लंबी झिलमिल करती
तट-रेखा से
सिंधु कुहर उठता लहरीला
हल्का नीला
लिपट रहा है नभ-भवनों के
अनगिन वातायन से झरते
नक्षत्रों जैसे प्रकाश से
पिंड, पिंड पर
राशि, पुंज पर
छाया पर छाया पड़ती है
भीमकाय गृह-आकारों की
लाल दमकते पार्कवेज़
हो रह दीप्त एम्बर-प्रकाश से
नभ में खिंचे ज्योति के मंडल
तिरछी उठकर पड़ती हैं प्रकाश-धाराएँ
नियन-गैस रंजित शीशे
चिकनी इस्पाती धातु

लौह ढाँचे
उठते घर
महाकाय दुहरे तिहरे पुल
भवनों के ऊपर से चली जा रहीं सड़कें
हैं स्काईवेज़ अधर में
लंबे बुलीवार्ड
लॉनों के हरे हाशिए
स्वप्न भरे रंजित निवास-गृह
फ्लैट, सुइट
डाउन-टाउन के चमत्कार
ज्यों जादू का संसार
सत्य साकार
धरती नदियों के तल में
चलती हैं रेलें
हैं रैनहीन सबवेज़
जहाँ से लातीं ले जातीं जीवन
बिजली की चलती हुई सीढ़ियाँ अंतहीन

जीवन द्रुत चरणों से चलता
जीवन धारा बहती है गतिवान यहाँ
ज्यों ईस्ट और हडसन मिलती हैं सागर से
जिनके स्निग्ध आलिंगन में
तारों सी बिम्बित बाहों में

है आँखमिचौनी खेल रही
छाया प्रकाश की यह नगरी
यह विभव विलासवती साम्राज्ञी रजनी की
फैली यथार्थ के विस्मय सी
यह मायापुरी
कि जैसे सजी कामकन्या
जादूगरनी अप्सरी
पास जो सदा बुलाये
हाथ जो कभी न आये

यह सोने की दुनियाँ
यह कंचन लंका, पाताल
धरा का सारा सोना
खिंच आया इस नागलोक में
चलता है विज्ञान चरण विद्युत के रखकर
नये तिलिस्मी रूप धार कर
जैसे चलते विद्युत-अक्षर
समाचार, सुर्खियाँ, पंक्तियाँ
चमकीले टाइम्स-स्क्वैर में
संवादों के वाक्य चल रहे
युद्ध कहाँ पर
मृत्यु कहाँ पर
है अकाल का नृत्य कहाँ पर

लक्ष लक्ष टन अन्न कहाँ पर
हैं अशांति हित चक्र कहाँ पर
और शांति हित रक्त कहाँ पर
कितने सैनिक खत्म हो गये
कितने अभी और बाक़ी हैं
कितने अरबों का तख़मीना
कितने खरबों की तैयारी
रॉकेट, जैट, उड़न-बम बोले
शांति हमारी, शांति हमारी
और भभक कर
महाशक्ति बोली यों अणु की
मृत्यु हो चुकी है भविष्य की

किंतु नहीं
मिट सका कभी न भविष्य मनुज का
जग का वैभव रचनेवाले ज्योति मनुज का
अणु का नाग नाथने वाले महामनुज का
अणु की अग्नि-गरज में भी
यह ध्वनि उठती है
जीवन में जीने का बल है
मनु की धरती अजर अमर है
जयति मृत्यु मरते भविष्य की
जय हो जीवन के भविष्य की ।

# न्यूयार्क में फॉल :

[२८ अक्टूबर १९५०]

थम गई बरसात नम
आ गया है नायलॅन सा पारझीना
यह खुला मौसम
मनोरम फॉल का मौसम
हिमानी रात
ठंडी धूप का मौसम
समुद्री हवा पर उड़ता हुआ
पत्तों भरा ऑटम

सात काले समुंदर पार
गोरे नाग की रानी
सात काले समुंदर पार
यह पाताल का पानी
हज़ारों मील दो जलखंड पर
ठंडे भँवर की कुंडली
भुजंगी फेन पर बैठी
धरा यह चंचला मरमेड सी
समुद्री रेत का सीमांत
सिल्वर-मिन्क सा फैला
खुला उभरा भरा तन
कसी नीची स्नान—स्कैंटी

सूर्य ऊपर खिला
जिसके बदन के रंग जैसी धूप का
रस ले रही लेटी धरा

वैभव रचे इस लाल तन पर
आवरण का काम क्या
जब खुल गया दिन
भाप से बादल हटे
फैंका हवा ने धुंध का
जल-तोड़ प्लास्टिक नील मैकिन्टोश
लो अब खुल गई है
मैनहैटन की गगन-रेखा
चमकते स्वप्न से
सौ खंड के
वे चारख़ाने जड़े
झिलमिल चाँदियों के क्यूब से
साँचे बने
नभपोंछ 'स्क्रैपर

पर मैं दूर
कितने योजनों के दूर
कोसों, मंज़िलों, क्लोमीटरों, लीगों
हवाइ मील, फैदम, नॉट

रयऽल, दीनार, ड्रीमा, मार्क
लीरा, फ्रांक, पेसेटा
डालर, पौंड—
जिनके वृत्त में घिरतीं
टचूनिक वर्दियाँ फ़ौजी
चमकते बैज
नीले, लाल, पीले रिबन
नभ में सर्चलाइट के
भयानक घूमते मंडल
सुनहरे सूत्र संचालित
कि डोरे खिंच रहे जिनके
सात काले समुंदर पार
हवा को फाड़ते जाते
उड़न बम भर बड़े बममार
लगाने सभ्यता में आग
कि जिनकी चील सी छाया
किये है सब गगन काला
खिंची है एशिया औ' हब्श
योरप, शांत सागर पार

नीचे वाल्ज़ आर्केस्ट्रा
रम्बा, जाज़ की धुन पर

नंगी नाचती टाँगें
चलते पीप-शो, बर्लस्क
ढलते पैग
अधिक रंगीन होती रात
उठते वक्ष, खुलती बाँह, गोरी जाँघ
अधिक रंगीन हो जाते
स्ट्रिप्टीज़ और बाँक्सिंग मैच
संस्कृति ठहर जाती है
बैले के बवंडर में

सुनहरा धुंध फैला है
चलती जा रहीं जिसमें
रंग की चूनरें, कुर्ती
अमामा, नाक तक बुर्के
भारी कोट, लहरते स्कर्ट
काले नैट, बौनेट, वेल
उभरे स्लैक्स
हल्की नाइटी
रेशम सुनहरे बाल
प्रेयसि, कामिनी, गुलनार
मदामाज़ेल, सिन्योरिना, स्वीटी, हनी
सोने का सुनहरा धुंध
मुझसे दूर

समय आगे बढ़ा जाता
समय पीछे रहा जाता
समय का भान मिट जाता
केवल दीखती मायावती की छाँह
गोरे नाग के फन सी
सब कुछ दूर
मिट्टी का परस भी दूर
शरद की चाँदनी भी दूर
मन पर आवरण गहरे
बहुत भारी बहुत भूरे
तन मन हो रहे सूने
झरे ज्यों पात मेपिल के
मन पर छा रहा आँटम
समुद्री हवा पर उड़ आ रहा
पत्तों भरा मौसम ।

# चाँदनी गरबा :

[१४ अक्टूबर १९५१]

उजला पाख क्वांर का फूला कास सा
खिली चँदीली रात कि कली सुहावनी
नरम नखूनी रंग धुले आकाश में
छिटक रही है पूरनमा की चाँदनी

उड़ती भीनी गंध हवा में दूब की
बिखरा सोई कोरे कुंतल कामिनी
खुली ओस में बिछी दूधिया सेज सी
पानी सी ठंडी है ऋतु मनभावनी

आसमान में भरा श्वेत रस सोम का
नयनों में मदभरी ललोंइं झूलती
हिम के मृग भर रहे चौकड़ी चाँद में
नवल नारि सी अलस केतकी फूलती

उभरे रोंएँ छुवा गई है चाँदनी
सींग नुकीले चुभा गई है चाँदनी
चंचल नयनी गोरी हिरनी चाँदनी

# सिंधु तट की रात :

[कोनी आइलैंड, न्यूयार्क का सुधि चित्र]

[२७ नवम्बर १९५१]

कार्तिक की पंचमी
है पंचमी की चाँदनी
पंचमी की चाँदनी में
याद आती है
चाँदनी हल्के कुहर के
साथ आती है

ये अधूरे चाँद का
ऐपन रँगा मंडल
गौर माथे पर गिरे, उड़
चंपई कुंतल
हो रहीं ठंडी हथेली
छू अलकदल को
सिंधु में डूबी हवाएँ
हो गईं शीतल

साँझ की सुधि में
हंसी सी आ गई होगी

बर्फ की पहली रुई भी
छा गई होगी
बाँह पर उड़ता
गले का रेशमी रूमाल
द्वीप पर आकर लहर
छितरा गई होगी

चाँद के सँग दूर की
वह रात आती है
चाँदनी हल्के कुहर के
साथ आती है

भीगता रस
भीगती मुसकान
किंतु सुधि होती अधिक रसवान
और मोती की मधुर पहिचान
भी
मोती गये के बाद आती है

पंचमी की चांदनी में
याद आती है
चांदनी हल्के कुहर के
साथ आती है

# दिवालोक का यात्री :

[दिसम्बर १९५१]

छोड़ आया तू सुधामय मंज़िलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

सामने पथ था हटे जीवन-कुहर थे
चमकते आकांक्षाओं के शिखर थे
मिट गये थे बंद घेरे ज़िंदगी के
सिंधु थे फैले नये नभ थे उभरते

चल पड़ा तू छोड़ पिछले संबलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

ज़िंदगी के स्वप्न उस दिन द्वार आए
कामना पर कामना के लोक पाए
स्वर्ग के दीपक जले थे आगमन को
किंतु तूने स्वर्ग के दीपक बुझाए

ज्योति छोड़ी ले नरक के काजलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

धूल था तू धूल ने तुझको खिलाया
उम्र भर में एक अवसर मुसकराया

ज़िंदगी में जब घिरा भीषण अंधेरा
ज़िंदगी के तब उजाले ने बुलाया

तू समझ पत्थर चला मुक्ताफलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

तू उड़ा संपाति का अभिमान लेकर
सूर्य छूने का नया अरमान लेकर
तेजमय रवि व्यास जब आया निकटतर
पंख झुलसे गिर पड़ा हत प्राण लेकर

तू चला पाताल छूकर बादलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

एक ही पथ है कि जिसके छोर दो हैं
विष इधर है उधर अमृत, मोड दो हैं
तू सुधा का छोर छूकर लौट आया
रह गये विष-लोक अंध अछोर जो हैं

भोग अब अपनी पराजय के फलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

आज तेरी विवशता पर रात रोती
दिवस रोता, धूप रोती, साँझ रोती

ग्लानि की मन में भरी बरसात रोती
आंसुओं के चरण धर हर बात रोती

अब मलेगी आयु खाली करतलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

ज़िंदगी का महल खँडहर हो गया है
रात कोई आँसुओं से धो गया है
मौन अब रहना पड़ेगा ज़िंदगी भर
क्योंकि तेरा गीत भी अब सो गया है

सो गया वह जो हिलाता था दिलों को
भूल से खोये चमकते भूतलों को

आँसुओं के पंथ पर अब तू चला चल
डालकर पर्दा हँसी का ढाँक दृग जल
भस्म हो व्यक्तित्व जीवन राख होवे
भस्म होने तक नये दीपक जला चल

पंक बनकर भी खिला तू उत्पलों को
भूल जा तू दूर की उन मंज़िलों को

# याज्ञवल्क्य और गार्गी :

## मोनोलॉग

[६ दिसम्बर १९५१]

प्रश्न मत पूछो
निरुत्तर हूँ

हाँक कर ले जाव तुम
सारी दुधारू गाय
स्वर्ण मुद्राएँ समेटो
फेंक दो काषाय
क्योंकि अब अव्यक्त, अक्षर
सूक्ष्म, निर्गुण तत्त्व में
जीवित धरा में
रण ठना है
हो गया है फिशन अणु का
परम ब्रह्म अनादि मनु का
(यदि कहीं हो
सदा जय हो)
आत्मा का बम बना है
अभी थोड़ा कम बना है

ब्रह्म ने भी खूब बदला नाम
लोक हित में पर न आया काम

# नये साल की साँझ :

[१ जनवरी १९५२]

ये नये साल की है साँझ नई
एक और वर्ष की किरन उजल के डूब गई
उठ रहा है वह नया दूज का चाँद
दूधिया चाँद श्वेत हँसली सा
लालिमा साँझ की सिमट सारी
जा रही सँवलते मैदानों से
जैसे घर लौटती किसान बहू
काम दिन भर का करके खेतों से
लाल मुँह हो रहा है मेहनत से

कच्ची मिट्टी से भरे
साँवले रखौड़े हाथ
जिनमें पहने है लाख के कंगन
हाथ में चाँद सा चमक हँसिया
काटता है जो फसल कुहरे की
बादलों की अंधेरे की
तैरते आँयँ जो हवाओं में

और नीबू की तरह ही कटे नज़र काली
जो कि गदराई फसल पर है लगी

छीन लेन को कली, फल, फलियाँ
बालियाँ नाज की हर साल पकी
जिससे फिर उड़ते रहें
खेत हरे पंख लगा
और खलिहान की नई जाजम पर
नाज की चाँदनी का ढेर लगे
गाड़ियाँ हर बरस की आँयँ भरी
हाँक कर लाँयँ जिन्हें
चाँद सुरुज के बीरन
तब उगे दोज
नये खेत
नदी के तीरन !

# मिट्टी के सितारे :

[ रुबाइयाँ ]

[जनवरी १९५२]

कल थे कुछ हम, बन गए आज अनजाने हैं
सब द्वार बंद, टूटे संबंध पुराने हैं
हम सोच रहे यह कैसा नया समाज बना
जब अपने ही घर में हम हुए बिराने हैं

है आधीरात, अर्ध जग पड़ा अँधेरे में
सुख की दुनियाँ सोती रंगों के घेरे में
पर दुख का इंसानी दीपक जलकर कहता
अब ज़्यादा देर नहीं है नये सवेरे में

हम जीवन की मिट्टी में मिले सितारे हैं
हम राख नहीं हैं राख ढके अंगारे हैं
जो अग्नि छिपा रक्खी है हमने यत्नों से
हर बार धरा पर उसने प्रलय उतारे हैं

है दीप एक, पर मोल सूर्य से भी भारी
है व्यक्ति एक वर्तिका, दीप धरती सारी
देखो न दुखी हो व्यक्ति, उठे इंसानी लौ
वनखंड जलाती सिर्फ़ एक ही चिनगारी

है झंझा पथ, पद आहत, दीपक मद्धिम है
संघर्ष रात काली, मंज़िल पर रिमझिम है
लेकिन पुकारता आ पहुँचा युग इंसानी
दो क़दम रह गया स्वर्ग, चढ़ाई अंतिम है

दीपक, तेरे नीचे घिर रहा अंधेरा है
सोने की चमक तले अनीति का डेरा है
तू इंसानी जीवन की रात मिटा, वर्ना
इंसान स्वयं बनकर आ रहा सवेरा है

# : तीन ऋतु-चित्र :

## : एक :

नैन हुए रतनार गुलाब से अंग खिले कचनार कली से
फूले पलाश सी
पूनम आई
चाँद के अंक में
रैन समाई
कुंद कपोलों पै
फैली ललाई
केसर चुंबन से हुए रंजित अलसित तन चिकने कदली से
कर में मसल गये
फूलों के कंगन
रंजित तन पै
मसल गये फागुन
उभरे लिपटकर
चीर सुहावन
छिटकी चमेली सी भुज बंधनों में चमके नयन हँसती बिजली से

## : दो :

चाँदनी हुई लाज से लाल

उड़ाती आँचल सुमन समीर
खुले लालिम तन-दीपित चीर

लगी अंगों पर अधर अबीर

मालती गंध भरे भुजबंध
सिमट तन हुआ फूल की माल

चाँदनी हुई लाज से लाल

आज मसले हैं मलय दुकूल
मसल कर चिपक गये कनफूल
उड़ी केसर कपूर की धूल

हुए मिलकर रतनारे नैन
हटाये जब घुँघराले बाल

चाँदनी हुई लाज से लाल

: तीन :

आज फूल रही कचनार
श्याम नहीं महलों में
सखी साजें बसंती सिँगार
सेंदुर भरें अलकों में

चाँद के सँग हँसें
बात कहते रुकें
बाँह छोड़ें कसें

कामिनी - गंध जैसी उमर न समाय
रेशम चीर सुनहलों में
आज फूल रही कचनार
श्याम नहीं महलों में

आये उड़ उड़ पवन
करे ठंडा बदन
रूखे फीके नयन

बीती जाए बसंती बहार
रैन बीते पलकों में
आज फूल रही कचनार
श्याम नहीं महलों में

# पूरब की किरन :

[२६ जनवरी १९५२]

पूरब में ज़िंदगी की उठ रही किरन
ओ भविष्य सूर्य, धरो मुक्ति के चरन

है अतीत रैन मलिन
दीपक इतिहास का
पीत प्रभा जीवन
अवरुद्ध पथ विकास का

दीप बने सूर्य करें नवजन वंदन
ओ भविष्य सूर्य, धरो मुक्ति के चरन

मिट्टी से उठ रहा
नया समाज
पदतल की धूल है
सुमेरु आज

कोटि मनुज कष्टों के टूटें बंधन
ओ भविष्य सूर्य, धरो मुक्ति के चरन

जनसुख की नींव धरे
यह नया विहान
दुख, विनाश, युद्ध की
खिंचे न फिर कमान

आदमी रचे नये समाज का भवन
ओ भविष्य सूर्य, धरो मुक्ति के चरन

# पृथ्वी प्रियतम :

[जनवरी १९५२]

आओ वसंत के प्रथम चरण
पतझर में जीवन के दर्शन
दिन हों पलाश से अरुन वरन
रातें रतनारी चन्द्र वदन
रस, गंध, परस, स्वर, सृजन व्रती
तुमसे धरती है सुमनवती

यह मदन धनुष सा वंक चन्द्र
है पंचकुसुम पंचमी कला
रति के गोरे रोचन तन सी
खिल रही कपूरी चन्द्रप्रभा

हैं फूल भरे भुजबंध
उड़ रहा मलय पवन सा उत्तरीय
किंशुक तल सी काली अलकें
तिल सुमन खिला मुख शोभनीय

सरसों के पीले खेतों पर
तुम उतरो धरकर चरण कुसुम

हे सृजन-मदन की सुरभि श्वास
आओ हे पृथ्वी के प्रियतम

फिर से धरती को फुल्ल अशोक बनाओ
फ़सलों की पकी गंध बनकर तुम छाओ
निर्माण बीज युग के पतझर से लेकर
तुम नवयुग का रंगोत्सव नया रचाओ

# रात है :

[सितम्बर १९५२]

रात है
सो गई दुनियां थकन से चूर
नींद में भरपूर
कुछ क्षणों को
ज़िंदगी की विषमता
कटुता हुई है दूर
एक सी आँखें सभी की
एक सी है रैन
जागतीं आँखें उसी की
है न जिसको चैन
मैं नहीं यह चाहता
सोता रहे जग
हो सदा ही रैन
चाहता हूँ किंतु कर्मठ दिवस में भी
नींद सा हो चैन

# तैंतीसवीं वर्षगांठ :

[ १६ अगस्त १९५२ ]

उम्र की इस सौखनी मीनार पर
मंज़िलें मैंने तिहाई पार कीं
ज़िंदगी को खींचकर लाते हुए
राह की सौग़ात सारी वार दीं
और भी ऊँची चढ़ाई सामने
और भी भारी लड़ाई सामने
यह भयानक खोखली मीनार है
शक्ति देता सिर्फ़ तेरा प्यार है
साँस लेने मैं रुकूँ तुम प्यार दो
मन, नयन, तन, अधर की रसधार दो
शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूँ मैं जुल्म के संसार से
बाँह गोरी मनुजता की ध्वज बने
छाप तेरे अधर की सूरज बने
फिर उमड़ते प्यार की दृढ़ ढाल दो
फिर नयन मेरे नयन में डाल दो
लाल आँचल से पसीना पोंछ दो
बाल पतली उँगलियों से ओंछ दो
उम्र की सारी थकान उतार दो
देह पर हथियार नये सँवार दो

क्योंकि जीवन पर खिची तल्वार है
दैन्य, दुख, अन्याय, अत्याचार है
आदमी पर आदमी का वार है
विश्व नैतिकता पतन के द्वार है

आज दुनियाँ के करोड़ों आदमी
सह रहे हैं धूप, सर्दी, औ' नमी
ज़िंदगी का एक भी साधन नहीं
उम्र तपती धूप है, सावन नहीं

जन्म दिन की क्या खुशी होगी उन्हें
ज़िंदगी है मृत्यु से भारी जिन्हें
भूख, बीमारी, ग़रीबी, गंदगी
कौड़ियों के मोल बिकती ज़िंदगी

आदमी का मिट गया सम्मान है
मनुजता का अब न गरिमा गान है

वह नहीं इंसान की है सभ्यता
स्वार्थ, लालच, युद्ध जिसके देवता
मूलधन हिंसा, गुलामी सूद है
आदमी बंदूक की बारूद है

जब जगत को चाहिए फुलवारियाँ
हो रहीं तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा-सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति जमाई जा रही

मिट रही रंगीन जीवन की छटा
छा रही हिंसक मशीनी घन घटा
आज जीवन को चुनौती मौत की
नीति क़ैदी है कुटिल कलधौत की

है ग़नीमत हम न सड़कों पर गिरे
भूख रोगों से नहीं अब तक मरे
है यही क्या कम कि औसत उम्र से
ज़िंदगी के दस बरस ज़्यादा हुए
विश्व में जब कुटिलता है, त्रास है
सत्य शिव का तब हमें विश्वास है
और है विश्वास जन कल्याण का
रंग, रस का, त्याग का, बलिदान का
फिर कंटीली दृष्टि रंजित प्यार दो
आदमी की शक्ति का आधार दो
प्यार तुमसे हो जगत से प्यार हो
प्रेरणा यह रंगमय संसार हो
शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूँ मैं मौत की ललकार से

# चंदरिमा :

[ एक इम्प्रेशन ]

[ २७ सितम्बर १९५२ ]

यह झकाझक रात
चाँदनी उजली कि सूई में पिरोलो ताग
चाँदनी को दिन समझ कर बोलते हैं काग
हो रही ताज़ी सफ़ेदी नये चूने से
पुत रहे घर द्वार
चाँद पूरा साफ़
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल
चिकनी चमक का दलदार
यह नहीं चेहरा तुम्हारा
गोल पूनम सा
मांसल चीकने तन का
क्योंकि यह तो सामने ही दिख रहा है
रुक रहा है
यह नहीं अब तक हुआ
बरसों पुरानी बात
भूली याद

## ढाकवनी :

[ ३० नवम्बर १९५२ ]

लाल पत्थर लाल मिट्टी
लाल कंकड़ लाल बजरी
लाल फूले ढाक के वन
डांग गाती फाग कजरी

सनसनाती साँझ सूनी
वायु का कठला खनकता
झींगुरों की खंजड़ी पर
झांझ सा बीहड़ झनकता

कंटकित बेरी करोंदे
महकते हैं झाब झोरे
सुन्न हैं सागौन वन के
कान जैसे पात चौड़

ढूह, टीले, टौरियों पर
धूप-सूखी घास भूरी
हाड़ टूटे देह कुबड़ी
चुप पड़ी है गैल बूढ़ी

ताड़, तेंदू, नीम, रैंजर
चित्र लिखीं खजूर पातें
छांह मंदी डाल जिन पर
ऊगती है शुक्ल सातें

बीच सूने में
बनैले ताल का फैला अतल जल
थे कभी आये यहाँ पर
छोड़ दमयंती दुखी नल

भूख व्याकुल ताल से ले
मछलियाँ थीं जो पकाईं
स्राप के कारन जली ही
वे उछल जल में समाईं

है तभी से सांवली
सुनसान जंगल की किनारी
हैं तभी से ताल की
सब मछलियाँ मनहूस काली

पूर्व से उठ चाँद आधा
स्याह जल में चमचमाता
वन चमेली की जड़ों से
नाग कसकर लिपट जाता

कोस भर तक केवड़े का
है गसा गुंजान जंगल
उन कटीली झाड़ियों में
उलझ जाता चाँद चंचल

चाँदनी की रैन चिड़िया
गंध फलियों पर उतरती
मूँद लेती नैन गोरे
पांख धौरे बंद करती

गंध घोड़े पर चढ़ीं
दुलकी चली आतीं हवाएँ
टाप हल्के पड़ें जल में
गोल लहरें उछल आएँ

सो रहा वन ढूह सोते
ताल सोता तीर सोते
प्रेतवाले पेड़ सोते
सात तल के नीर सोते

ऊंघती है रूंद
करवट ले रही है घास ऊंची
मौन दम साधे पड़ी है
टौरियों की रास ऊंची

सांस लेता है बियाबाँ
डोल जातीं सुन्न छाँहें
हर तरफ़ गुपचुप खड़ी हैं
जनपदों की आत्माएँ

ताल की है पार ऊंची
उतर गलियारा गया है
नीम, कंजी, इमलियों में
निकल बंजारा गया है

बीच पेड़ों की कटन में
हैं पड़े दो चार छप्पर
हांडियाँ, मचिया, कठौते
लट्ठ, गूदड़, बैल, बक्खर

राख, गोबर, चरी, औंगन
लेज, रस्सी, हल, कुल्हाड़ी
सूत की मोटी फतोई
चका, हंसिया और गाड़ी

धुँआँ कंडों का सुलगता
भौंकता कुत्ता शिकारी
है यहाँ की ज़िंदगी पर
शाप नल का स्याह भारी

भूख की मनहूस छाया
जब कि भोजन सामने हो
आदमी हो ठीकरे सा
जबकि साधन सामने हो

धन वनस्पति भरे जंगल
और यह जीवन भिखारी
शाप नल का घूमता है
पौथरे हैं हल कुल्हाड़ी

हल कि जिसकी नोक से
बेजान मिट्टी झूम उठती
सभ्यता का चाँद खिलता
जंगलों की रात मिटती
आइनों से गाँव होते
घर न रहते धूल कूड़ा
जम न पाता ज़िंदगी पर
युगों का इतिहास-घूरा

मृत्यु सा सुनसान बनकर
जो बनैला प्रेत फिरता
खाद बन जीवन फसल की
लोक मंगल रूप धरता
रंग मिट्टी का बदलता
नीर का सब पाप धुलता
हरे होते पीत ऊसर
स्वस्थ हो जाती मनुजता

लाल पत्थर, लाल मिट्टी
लाल कंकड़, लाल बजरी
फिर खिलेंगे ढाक के वन
फिर उठेगी फाग कजरी

# ऑटोग्राफ :

[१ जनवरी १९५३]

है वही ज़िंदगी का दर्द
है संघर्ष वही
हर नया साल
आता है पुराना बनकर

# गीत

[ २९ मार्च १९५३ ]

छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

जीवन में हैं सुरंग सुधियाँ सुहावनी
छबियों की चित्र-गंध फैली मनभावनी
तन सुगंध शेष रही बीत गई यामिनी
कुंतल के फलों की याद बनी चाँदनी

भूली सी एक छुवन
बनता हर जीवित क्षण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

यश है, न वैभव है, मान है, न सरमाया
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया
प्रभुता का शरण-बिम्ब केवल मृगतृष्णा है
हर चंदिरा में छिपी एक रात कृष्णा है

जो है यथार्थ कठिन
उसका तू कर पूजन

छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

द्विविधाहत साहस है दिखता है पंथ नहीं
देह सुखी हो पर मन के दुख का अंत नहीं
दुख है न चाँद खिला शरद रात आने पर
क्या हुआ जो खिला फूल रस-वसंत जाने पर

जो न मिला भूल उसे
कर तू भविष्य वरण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन

# देह की आवाज़ :

[ २६ जुलाई १९५३ ]

मन ने शरीर से पूछा
क्यों है इतना आकर्षण
रसमय चुंबकमय कसी देह का
चिकने माँसल तन का
उस नोकीली रंगीन नज़र का
लालच चंद्रानन का
भोले ओठों के आसपास
वह एक गुलाबी सा मंडल
प्रतिपल खिलता वह आयु कमल
क्यों इस वीनस से
तन का इतना आकर्षण
इस देह लता में हैं
सारे भौतिक दुर्गण
वह हाड़ चाम की पुतली
मलिन अपावन
फिर क्यों तुझको मनभावन

पशुओं जैसे सब काम
देह करती है
घिन भरी जन्मती, जीती है, मरती है
इस देह मोह से
सब अशांति फैली है

ऊपर से उजली
भीतर से मैली है
तन का आकर्षण
है पशु का आकर्षण
तू पशुता से ऊपर उठकर
मानव बन
है बुद्धि ज्ञान ज्यादा तुझमें
पशुओं से
इसलिए नेह तू लगा
ज्ञान छबियों से
तू मुड़ आत्मा की ओर
देख छबि उसकी
जिस गुण से होती है
पहिचान मनुज की

अब तक जो चुप थी देह
ज़रा मुसकाई
अनगिन बसंत की
रंग-गंध उठ आई
ऐसी मुसकान कि जैसे
चाँदिनि छाई
ऋतु-बीज छू गई
भावमयी चिकनाई

ज्यों शून्य गगन
सहसा धरती बन जाए
बेशक्ल हवा
रसवती कली हो जाए
मधु ध्यान प्रिया का
स्वयं प्रिया बन जाए
तसवीर फ्रेम से उतरे
चलकर आए
बादल की छाँह
खेत बन जैसे उमड़े
खुद फ़सल उठे
नभ घटा बने औ' घुमड़े
ज्यों धुंध याद का
महासिंधु बन ठहरे
गिरि बने त्याग
करुणा गंगा बन लहरे

कोरी, नीरस, निर्गन्ध
बात पर मन की
इस तरह उठी मुसकान
सलोने तन की

उत्तर में फिर आवाज़
देह की बोली
सब रचना-कला सृष्टि की
सिहरी डोली
संसृति मिठास प्याले भर हो लहराई
स्वर, शब्द, रेख की
हार गई चतुराई
झूमी चिर कुँवरि अनादि प्रकृति मदभीनी
विस्तार पा गई छबियों की रंगीनी
हो गई वनस्पति सुमनवती अलबेली
धरती सिहरी
ज्यों उरजों छुई नवेली
नक्षत्र खिले चाँदनी नई मुसकाई
फिर वक्ष मिलन, चुंबन की बेला आई
उन मुग्ध-वधू ऋतुओं के
गीत रँगीले
धर नृत्य भंगिमा
बने फूल चमकीले
काँपीं टूटीं स्वर सप्तक की प्राचीरें
भू नभ तक झनकारों की पड़ीं लकीरें
बोली यों देह सुधा संसृति में भरती
मिट्टी की देह कि ज्यों मिट्टी की धरती

वह राग रूप
साकार-गंध कस्तूरी
वह स्वयंप्रभा
हो गौर, श्याम या भूरी
मिट्टी ज्यों कली, फूल, फल, फ़सल खिलाती
यह देह-शिखा देहों के दीप जलाती
मिट्टी का बुझा दीप
धरती कहलाती
पड़ती है जबतक नहीं
देह की बाती
वे बुद्धि, ज्ञान, आत्मा की सभी अदितियाँ
हैं देह-तेज की ज्योतित भावाकृतियाँ
खिलता है देह बीज से
पंकज मन का
सूरज से उठता
जैसे बिम्ब किरन का
हैं देह भोगहित सृष्टि मधुमती के वर
लालिम चरणों में बिछी प्रकृति की केसर
यह नील श्याम मानव जगती है मनहर
तनरचना में मानव तन सबसे सुन्दर
क्यों सीमित हो धड़कन तन की प्रानों की
है सीमा कहाँ प्रकृति के वरदानों की

तन का विदेह द्युति मंडल
है मानवता
जो सीमित करे प्रकाश
वही दानवता

इसलिए न बुझते
मनुज अग्नि के मोती
जिनसे गलकर
जग की नव रचना होती
उन तत्त्वों पर यह देह
विजय पाती है
इतिहास फ़सल
जिनसे मुरझा जाती है
है नहीं देह तृष्णा
अशांति का कारण
जीवन पियास जब हुई न अभी निवारण

इसलिए अरे ओ मन विदेह
ओ एक देह के खंड-बिम्ब
तू उस विराट उजयाले में
दे मिला किरनमय निजता
जिस पथ पर चलती जाती नई मनुजता।

# सावन की रात :

[ २७ अगस्त १९५३ ]

नीली बिजली मेघों वाली
झींगुर की गुंजार
धुंधभरा साँवर सूनापन
हवा लहरियोंदार
घन घुमड़न भुज बंधन के उन्माद सी
बढ़ती आती रात तुम्हारी याद सी

रात रसीली बूंदोंवाली
जैसे देह रसाल
यहाँ महक उठती मेंहदी की
वहाँ हाथ हैं लाल
विद्युत दीपन कंगन की चमकार सी
अधर छुवन की सिहरन मंद फुहार सी

घन मतवाले काजल काले
जैसे लंबे बाल
सोंधी धरा-गंध सी जिनकी
सुधि करती बेहाल
मिलन रात जो तन पर करते छाँह सी
धरा-कंठ जब इन्द्र डालता बाँह सी

इन्द्र-धरा के नयन, अधर, भुज
वक्ष मिलन का मास
बहुत दिनों के बाद मिले
आलिंगन का उल्लास
बूँदें पड़तीं फिर फिर अंकित प्यार सी
आँखें मुँदतीं सुख भीगे अंधियार सी

भूले हम आनन्द, रंग
जीवन रस का विश्वास
तन में तेज़ धूप वर्षा की
मन में साँझ उदास
उम्र सलोनी ठिठके सुमन विकास सी
मेघ दबे उजयाले के आभास सी

तन मन वाणी की सीमाएँ
बंधनहत संसार
किंतु भाव बल से ही होता
जीवन का विस्तार
इसीलिए है रूप रंग की प्यास भी
इसीलिए है जीवन में विश्वास भी

## : हेमंती पूनो :

[ १९ नवम्बर १९५३ ]

चाँद हेमंती
हवा बहती कटीली
चाँदनी फैली हुई है
ओस नीली

चाँदनी डूबी हवा सुधि-गंध लाती
याद के हिम वक्ष से आँचल उड़ाती
चाँद के जब गोल बीसों आइनों में
मोम की सित मूर्ति सी गत आयु आती

हर निशा तब
पूर्णिमा बनती सजीली
चाँदनी फैली हुई है
ओस नीली

आज जीवन चाँदनी रूठी हुई है
आयु छबि शतखंड है टूटी हुई है
ज़िंदगी के चाँद का ठहराव कम है
आइनों की पाँत यों फूटी हुई है

पूर्णिमा भी इसलिए
लगती मटीली
चाँदनी फैली हुई है
ओस नीली

आज दिखता है दही सा चाँद शीतल
कौन जाने स्याह शीशा चाँद हो कल
उड़े उजली धूल बनकर चाँदनी भी
आबनूसी मूर्ति सी हो आयु उज्ज्वल

इसलिए हेमंत की
यह मंद ठिठुरन
तन छुवन से
ऊष्म तुम कर दो, रसीली

# चरित्र की केसर :

[३० जनवरी १९५४]

संचित कर लेने दो धन
चारित्र्य फूल से लेकर
अनछुए नये केसर कन

व्यक्तित्व सिंधु बन जाये
तल कूल हीन हो जाये
डूबे संपूर्ण हिमालय
पर ऊपर लहर न आये

बाहर के सब आंदोलन
उतरें गहरे अंतर में
ज्यों धूल बैठ जाती है
समतल पाकर थिर जल में

आँधियाँ विरोधी आयें
तूफ़ान कठिन टकरायें
भूचाल फटें भावों के
बादल षड्यंत्र रचायें

टूटे बिजली भयबल की
गज मंथर भाव न छूटे

रवि गिरे स्याह पत्थर बन
नभ का ठहराव न टूटे

नभ सा अंतर, जिसमें अगणित
ज्योतिर्ब्रह्मांड समाये
सूरज के बड़े बड़े साथी
बनते मिटते हैं आये

शशि शुक्र जल बुझे रंग भरे
पर दाग़ न लगने पाया
तारे टूटे, ग्रह राख हुए
ध्रुव अस्त न होने आया

ध्रुव धीरज गल न सका मन का
थी आँच हज़ार अग्नियों की
छू सकी न शांति चंदिरा को
नोकीली छाया शनियों की

इस रहस पद्म की छबि विराट
है नहीं किसी ने भी आँकी
इन चाँद सितारों के आगे
है और बहुत दुनिया बाक़ी

मन में जितने अनुभव गहरे
उतना ही मौन सधा मुखपर

हैं घेरे जितनी ज्वालाएँ
उतना ही शीतल है अंतर
पृथ्वी जैसा संतोष परम
मिट्टी सा मन उर्वर उदार
वाणी हो जाए मंत्र छंद
फ़सलों जैसे ऊगें विचार
तू बात कहे जो एक बार
वह कोटि कंठ स्वर दुहराएँ
तू बोये जो भी भाव बीज
वे सदियों तक उगते जाएँ
दुख के दानव ग्रह बुझें सकल
सामाजिक ज्वाला राख बने
इंसान बने खुद ही ईश्वर
मानवता उजला पाख बने ।

[ गांधी दिवस ]

# इतिहास :

**[ लेखक के बृहद् काव्य 'पृथ्वी' का एक अपूर्ण अंश ]**

खोलो यह ग्रंथ है
चिरंतन समय का
आदि पृष्ठ धुँधले हैं
अक्षर मिटे हैं कुछ
उड़ गया है मुख्य पृष्ठ
भूमिका न मिलती है
पहले अध्यायों के
खो गये हैं पृष्ठ कई
हो गये हैं लुप्त कई
धूल ढके गुप्त कई
बीच बीच में के कुछ पृष्ठ
फटे दिखते हैं

जिन पर है कटा-चिह्न
निर्दय तलवार का
युद्ध के प्रहार का
ग्रंथ कहीं छेद भरा
काट गया जिसे मंद
दीमक अतीत का
कितने अध्यायों की

पंक्तियाँ घिसी ही रहीं
फैल कर स्याह लाल
स्याही जमी है कहीं
इंसानी खून की
मुरझाकर जम गई
कहानी प्रसून की

लेकिन न देखो तुम
धूल भरी छापों को
रक्त उत्पातों को
इंसानी पापों को
स्याह-सुर्ख धब्बों में
चलती आलोक किरन
जीवन की ज्वाल भरी जलती मशाल है
विजय कथा पृथ्वी की
सृजन चिरंतन की
लोक अनुरंजन की
जीत जन मंगल की
शोषण अमंगल पर
अशुभ कुरूप पर
सदा जीत सुंदर की

असुरों पर देवों की
दिति पर अदिति की
अंधकार दैत्यों पर
तेजस आदित्य की
राक्षस पर रुद्र की
वृत्र पर इन्द्र की
रावण पर राम की
बर्बरता कंस पर
संस्कृति के श्याम की
नागर संतान की
और आज
सामाजिक प्रेतों पर
मुट्ठी भर दैत्यों पर
बहुजन महान की
प्रतिक्षण विजय है

धरती की सुंदरतम
सृष्टि इंसान है
मानव की पशुता ही
ज़िंदा शैतान है
उस ही शैतान पर
जीत इंसान की
पृथ्वी कथा है
इतिहास की कहानी है ।

# नींव रखनेवालों का गीत :

[ २८ अप्रैल १९५४ ]

माथे पर न रक्खो हाथ
ज़रा कुछ और तपने दो
आँखों में न पलकों की उतारो रात
श्रमजा नींद के अंकुर पनपने दो
हुईं हैं लाल आँखें
इन्हें थोड़ा और जलने दो
दहन के खरे पानी से
समय की कोर सजने दो
सहज का सुख नहीं मंजूर
छोटी तृप्तियाँ बेकार
उठे जबतक न मिट्टी से नया संसार
तुरत की चैन रंगीनी सभी निस्सार

मिलाना खींच छोटी डोर के दो छोर
लगाना गाँठ मुश्किल है
किसी की पहिन कर उतरन
समझना पा लिया त्रिभुवन
मुलम्मा, भुलावा, छल है
असल सुख के लिए मेहनत
पसीने से बनेगा पथ

थकन है खींचने की
इसलिए छुट जायगा क्या
राह ही में सूर्य निर्मित रथ
इसी से ज़िंदगी की तिक्त
कड़वी, कटीली अनुभूति
मन में और पचने दो
हमारे दर्द, दुख, संघर्ष की
मज़बूत छाती पर
नई पीढ़ी सँवरने दो

# इन्दुमती :

[ काव्य-रूपक ]

सूरज के आलोक पंथ सी
रघुकुल की गाथा उज्ज्वल है
छंदों में ज्यों गूँज ओ३म् की
ज्यों हविष्य में गंगाजल है
जिनके यश के यज्ञ धूम से
निर्मल सौ सौ शरद हुए हैं
उजले कमल छत्र सा जिनका
तन की छाया का मंडल है

सांध्य अग्नि ज्यों दीपित होती
लेकर तेज अंश दिनकर से
नांदिनेय रघु से अज जन्मे
ज्यों बालेन्दु क्षीर सागर से
रूप कांति ज्यों एक दीप से
जलकर पाता दीप दूसरा
रविकुल की श्री अज ने पाई
कार्तिकेय ने ज्यों शंकर से

हंसपंक्ति, नक्षत्र, कुमुद में
उनकी कीर्ति मधुरिमा छाई

उधर रसीली सुमनवती ऋतु
इन्दुमती के तन पर आई
ज्यों मिलनातुर अंबुधि उठता
लेने चन्द्रोदय का चुंबन
इन्दु स्वयंवर में अज पहुंचे
पा विदर्भ से राज निमंत्रण

कामना रंजित हुई विश्राम की वह रात
नींद आई सकुचती ज्यों नवप्रिया का गात
रात बीती, पर उनींदे थे नयन जलजात
ले स्वयंवर के अरुण घट आ गया था प्रात

## प्रभाती

खिल गया है फूल दिन का
किरण रथ ले अरुण आया
उठो हे रघुवंश दिनमणि
कमल केसर पवन लाया

राजलक्ष्मी सी धरा यह
कुसुमिता आसागरा यह
छू चरण की कांति होगी
फुल्लमुख इंदीवरा यह

नागकेसर चँवर, शतदल छत्र
पृथ्वी ने सजाया

खिल गया है फूल दिन का
किरण रथ ले अरुण आया।

रंग सुमन, मणिचौक, रत्नघट
सजे रत्न आसन चमकीले
चित्रित हुआ स्वयंवर मंडप
बिछे रम्य केसर पट पीले

शंख, मृदंग, तूर्य का वादन
ज्यों मेघों का मंगल गर्जन
सूर्य चन्द्र के वंशज आये
विद्युत से चमके सिंहासन

पारिजात ज्यों पुष्पराशि में
कार्त्तिकेय जैसे मयूर पर
चारुपलक अज आकर बैठे
सुरधनु से आसन के ऊपर

अगरु धूम की रेखाएं जब
अरुण पताकाओं तक आईं
रंजित वसना, दीपशिखा सी
इंदुमती को सखियाँ लाईं।

**स्वयंवर गीत**

हे लाजवन्ती, चकोरनयना
तुम चाँदनी सी वरो चन्द्रमा

मधूक माला ले चूर्ण लोहित
तन रोचनागौर, घनसार विरचित
अरालकेशी, नितम्बगुर्वी
मृगांक मुख पर छाई अरुणिमा
वरो चन्द्रमा

हिमवक्ष पर सुरभित पत्र-रचना
रम्भोरु रागारुणा क्षौमवसना
तुम कौमुदी सी पराग पथ पर
संचार करती चलो मधुरिमा
वरो चन्द्रमा।

लोचन भृङ्ग खिंचे भूपों के
रूप कमल पर स्वयंवरा के
चतुर सुनन्दा परिचय देती
चली साथ में पतिंवरा के

राजहंसिनी जाती हो ज्यों
उठती लहरों से पद्मों पर
मुग्ध हुए नृप, इन्दुमती के
रचे अलक्तक से चरणों पर

तब वंशावलियों से परिचित
रनिवासों के रस में घोली

मगधराज के संमुख जाकर
चतुर सुनन्दा यों हँस बोली

**सुनन्दा**

सखि स्वयंवरे, नयन उठाओ
लाज विमुग्धा संमुख आओ

ये सुरेन्द्र से मगध महीपति
इनसे पृथ्वी राजवती है
नक्षत्रों से भरी रात ज्यों
शशधर से ही कांतिमती है
इन्हें वरण कर तुम ऋतम्भरा
वसुधा सी रानी बन जाओ
सखि स्वयंवरे, नयन उठाओ

**इन्दुमती**

सखि, जब नहीं कौमुदी रजनी
दिन में कैसे खिले कुमुदिनी

**सुनन्दा**

कमलमुखी, ये अंगदेशपति
इन पर मुग्ध देव ललनाएं
शरच्चन्द्र से ये अवन्तिपति
जिनकी छबि से दीप्त दिशाएं

शुभ्र चंद्रिका छाई रहती
इनके भवनों उद्यानों में
कृष्णपक्ष को उज्ज्वल करतीं
मौलिचन्द्र की उदित कलाएं

**इन्दुमती**

पर सखि, बंद तामरस अंतर
खिला न पाते कोटि सुधाकर

**सुनन्दा**

चारुलोचने, इधर निहारो
कार्तवीर्य से परम प्रतापी
ये अनूप देश के स्वामी
इनके यज्ञ-यूप द्वीपों में
अग्निदेव के ये अनुगामी
माहिष्मती राजभवनों की
बनो अंकलक्ष्मी तुम सुन्दर
पद्मसार सी छबि फैलाओ
रम्य नर्मदा की लहरों पर

**इन्दुमती**

सुन सखि, शरद यामिनी उज्ज्वल
फुल्ल न करती स्वर्ण कमल दल

**सुनन्दा**

हे अभिरामा, ये हिमांशु से
दृगरंजन नृप शौरसेन के
चैत्र चन्द्रमा बनकर रहते
रनिवासों की कांत रैन के
जिनके जलविहार में बहता
वक्षस्थल का गोरा चन्दन
कालिंदी के नीले जल को
ज्यों गंगा करती आलिंगन
जहाँ चैत्ररथ से भी सुन्दर
फलों छाया है वृंदावन
वर्षा शीतल शिलातलों में
नील मयूरों का है नर्तन
वक्षहार में कौस्तुभ जैसी
जो द्युतिवंत नागमणि पहिने
उन्हें वरो तुम सखी सुनयने

**इन्दुमती**

किन्तु नदी कब सागरगामिनि
गिरि से रुकती है, मनभाविनि

**सुनन्दा**

ये महेन्द्र से हेमांगद
जिनका सागर पर राज्य अटल है

जहाँ लौंग के फूलों डूबा
द्वीप अनिल बहता शीतल है
याम-तूर्य है सिंधु बजाता
भरता तालवनों में मर्मर
फेनराशि से रत्न चढ़ाता
इनके चरणांकित महलों पर

यदि रहना चाहो मृगनयनी
नागवल्लियों के कुंजों में
हैं तमाल की सेज जहाँ पर
एला गंधित मलय वनों में
तन्वि, वरो तुम पांड्यराज को
जिनके तन पर है हरिचंदन
हेमवर्ण तुम, ये इन्दीवर
ज्यों विद्युत से मिलें श्याम घन

**इन्दुमती**

पर सखि, मुंदे कमल के लोचन
बालारुण के हुए न दर्शन

**[ विलयन ]**

वह स्वयंवरा दीपशिखा सी
चलती थी जिस नृप को तजकर

कांतिहीन पथ-भवनों सा मुख
हो जाता रजनी सा सांवर

चतुर सुनन्दा तब मुसकाकर
अज के संमुख बोली आकर

**सुनन्दा**

लो अब देखो पद्मलोचने
भानुवंश की शोभा निरुपम
अनवद्यांग अनंगरूप अज
राजकमल पर बालारुण सम

तेज अंश इक्ष्वाकु वंश के
शत यज्ञों की कीर्ति कथाएं
भूमि, सिंधु, पाताल, स्वर्ग में
अंकित जिनकी रथ रेखाएं

कुल की कांति, चन्द्रलेखा छबि
गुण, लावण्य, अरुण-मणि यौवन
इन्हें वरण नवकुंवरि करो तुम
मिले रत्न से जैसे कंचन

[ विलयन ]

× × ×

तब संकोच भरी चितवन से
इन्दुमती ने पलक उठाये
नयन हुए अनुरक्त देखकर
अरुण लाज से फिर भर आये

कुसुमित अंग हुए रोमांचित
लाल हुआ गोरा चन्द्रानन
चरण रुके, झुक गये नयन फिर
मुग्ध हृदय का कर चित्रांकन

समझ गई सब चतुर सुनन्दा
इन्दुमती से हँसकर बोली
अभी शेष हैं अन्य भूप सखि
आगे चलो रुको मत भोली

पर उत्तर में एक बरजती
रोष कुटिल जब चितवन पाई
लाजवती के हाथों से ले
वरमाला अज को पहिनाई

मूर्तिमय अनुराग जैसी वह स्वयंवर माल
कामिनी ने ज्यों भुजाएं कंठ में दीं डाल
इन्दु अज का मिलन जैसे सिंधु सुरसरि धार
ज्यों शरद के चन्द्रमा से चांदनी सुकुमार

सुख का सिंधु नगर में फैला
उठा गगन तक मंगल वादन
इंदुमती अज गये नगर जब
फूल उठे पुरजन के आनन

पुर सुंदरियों ने दर्शन को
खोले स्वर्ण सौध वातायन
श्लथ कुंतल, अधरचे दृगंचल
खुले वसन, रुक गये प्रसाधन

रत्न, अर्घ्य, मधुपर्क सहित अज
इन्दुमती के साथ सुहाये
शशि किरणों से तट तक खिचकर
फेन भरा सागर ज्यों आये

अभिमंत्रित अर्चित हुताग्नि से
वह विवाह मंडप था पावन
मिल नयन, कर से पुलकित कर
मिलन यज्ञ हो गया सुहावन

**यज्ञ-गीत**

तुम छबि-रुचिरा, यौवन मधुरा
हो ध्रुव सुहाग, रविकुल कमला
वे बालातप
तुम चंद्रगात

ज्यों मिलें मेरु पर
दिवा रात
वे मदन और तुम कामकला
हो ध्रुव सुहाग, रविकुल कमला
वह यज्ञधूम
हवि सार सना
कानों का नीला
कमल बना
धूमारुण दृग, अंजन बिखरा
हो ध्रुव सुहाग, रविकुल कमला
शिखिपंख छत्र
गज दन्तासन
यव, दूब, तीर्थजल
नीराजन
तुम ऋद्धि सिद्धि मृगमद तिलका
हो ध्रुव सुहाग रविकुल कमला

[ विलयन ]

# : धरा दीप :

## गीत

कातिक का श्याम फूल
दीपों की पाँखुरी
धरती पर बजे
नए जीवन की बाँसुरी

रचना का स्वर्ण कमल
खिला नगर गाँव में
जली नई दीपावलि
सुखश्री की छाँव में
लक्ष्मी का रूप नया
नई रैन साँवरी

दीप जलें द्वार - द्वार
अन्न धन मिले अपार
सदियों का रोग शोक
जले ज्यों पतिंग भार
पहिने सुहाग वसन
मानवता नागरी ।

झिलमिल जलते दीप धरा के
सदियों से
सदियों से

जीवन की लौ उठती रहती
नगर, ग्राम, वन, नदियों से
मिट्टी का आलोक चिरंतन
गतिमय है जिससे जगजीवन
अंधयारे के कोट कँगूरे
सदा काटता जो सूरज बन
हर युग में उठती है
एक किरन तेजोज्ज्वल
हर युग में खिलता है
एक दीप का मंडल
दिन में सूरज
दीप रात में जो बन जाता
हर युग के अंधयारे में
मानव बन आता

धरती पर घिरती
जब कभी अमावस काली
तभी नई संस्कृति की
उठती है दीपाली
नई चमक का दीप
लिये कर में वह आती
ऊंची हो जाती है
मानवता की बाती

सदियों से इतिहास चक्र
यह अविरल चलता
एक दीप हर वक़्त
अंधेरे में है जलता
मिट्टी का उल्लास अमर है
जीवन का विश्वास अमर है
जलते जाते दीप, दीप से
दीपों का यह तार अमर है
यह दीपों की डोर
कभी है खत्म न होती
अंधकार के सागर से
ले आती मोती
उन्हीं मोतियों से है बनी
समय की माला
मनुज-दीप रुद्राक्ष
लोक जीवन छबि-शाला

फिर इतिहास फेरता
सुधि माला के मनके
अंधकार में कब कब
दीप जले जीवन के
दीपों का यह पर्व पुरातन
सदियों से आलोक सनातन

हर युग ने इसकी लौ में
हैं दान किये अपने प्रकाश कन
तभी चिरंतन है उजयाली
तभी अमर हो सकी दिवाली

जिस दिन जग में अंधयारे पर
जीता था आनंद उजाला
साधन लक्ष्मी ने मानव को
जब पहिनाई थी जयमाला
उस दिन बंधन टूटे भय के
दीप जल गये मनुज विजय के

प्रथम भोर जब खिला जगत का
मृत्युभरा तम मिटा विगत का
मानव ने रवि को पहिचाना
प्रथम रहस्य सृष्टि का जाना
जानी सूर्य चन्द्र के दीपों की उजयाली
रातों जलती हुई सितारों की दीवाली
फिर फन खोल रात जब आई
जंतु समान प्रकृति चिल्लाई
तब सहचरि के साथ मनुज ने
वन में पहिली आग जलाई

आग जली, वन खंड मिटे
जंगल में जीवन जागा
घन अंधकार का महाजंतु
मानव बस्ती से भागा
पहिचाने आदि मनुज ने
वन, पर्वत, नदियाँ, सागर
फिर रत्नों भरी प्रकृति के
कुछ साधन हुए उजागर

पर अकेले कठिन था
घन प्रकृति को देना चुनौती
उस अगम, अज्ञात से
लाना अनोखे रत्न मोती
दिति, अदिति के पुत्र
बलशाली, यशस्वी देव दानव
प्रकृति मंथन को जुटे तब
खोज लाने रत्न अभिनव

थे खड़े पर्वत भयानक
वन खड़ा था पथ बरजता
सामने थे नाग दुर्दम
सिंधु उठ उठ कर गरजता

हाथ में कर विषम पर्वत
चीर कर सारे सघन वन
नाथ कर सब नाग हिंसक
रच गया फिर सिंधु मंथन

फेन भरे सागर का फैला था अंधकार
ऊपर थे घने मेघ नीचे था जल अपार
बंधन में आया फिर अंतहीन वह प्रसार
द्वीपों के खुल गये रहस्य भरे रत्न द्वार

पृथ्वी के शतदल पर लक्ष्मी फिर उदित हुई
नया स्वर्ण धान्य देख निर्धनता विजित हुई
मानव के यत्नों से महाप्रकृति चकित हुई
सामाजिक सुख की वह प्रथम रात मुदित हुई

आदिम समाज बीच
पहिली वह प्रकृति खोज
कृषि युग का बीज बनी
संस्कृति की प्रथम दोज
रस मिले वनस्पति से
धेनु, अश्व वन्य शोध
द्वीपों से सुरा, अप्सरा
सुवर्ण, रत्न बोध

प्रश्न उठा रत्नों का स्वामी अब कौन रहे
भोग करे कौन अधिक और कौन मौन रहे
श्रेष्ठ रत्न देवों को मिले थे विभाजन में
जागी तब प्रतिहिंसा असुरों के तन मन में

साधन युत देवों के
उपनिवेश स्वर्ग बने
वनचर से फिरते थे
असुरों के झुण्ड घने
दुग्ध, अन्न, सुधा, सोम
देवों के धाम सने
देख क्षुब्ध हुए असुर
साधन संघर्ष ठने

देवता नव शक्ति पाकर
हो रहे थे मुदित मन में
पर विषम षड्यंत्र करते थे
असुर मिल श्याम वन में
पृष्ठ पर था भीम पर्वत
सांस लेता घोर जंगल
थी मशालों में चमकती
दानवों की देह श्यामल

विकट नरकासुर उठा तब
पाशवी वन-शक्ति लेकर
छीनने ऐश्वर्य अमृत
सोमपायी सुख जलाकर
उठा हिंसा का अंधेरा
धरा से लेकर गगन तक
कर उठे चीत्कार फिर से
सृष्टि के पाषाण कन तक

फिर से थी प्रबल हुई शक्ति अंधकार की
कंपित धरा थी प्रकाश को पुकारती
और सहन जब न हुई पीर रक्तधार की
काटी तब विष्णु ने अनीति शक्ति नारकी

फैला फिर जीवन में लक्ष्मी का सुख अपार
जले विजय दीप मिटा चौदस का अंधकार
रत्न रचित दीप जले घर घर में द्वार-द्वार
प्रतिहिंसा, रक्त,कलह-रात जली हुई क्षार

सदियों तक बहते बहते यह सुख की धारा
हुई क्षीण, घिर आया सामाजिक अंधयारा
एक छत्र था लोक नहीं सत्ता खंडित थी
धरा अनार्य बनैली छाया से मंडित थी

था अगस्त्य ने पंथ दिखाया विन्ध्य पार का
किंतु अरण्यों में था बादल असुर भार का
ऋषियों के एकाकी आश्रम थे दक्षिण में
राक्षस थे लंका में वन्य जातियाँ वन में

ले आर्यों से महाज्ञान
रावण बलशाली
वन ज्वाला बन फैला
भरी रक्त की थाली
कंपित हुई दिशाएं
वानर सत्ता हारी
खड्ग लिये वह उठा
जीतने दुनियां सारी

**रावण**

रक्त
और रक्त
और रक्त मुझे चाहिए
जीवन का रक्त मुझे चाहिए
मानव का रक्त मुझे चाहिए

रक्त कर मुझे देते देवता
त्रिभुवन का शीश सामने झुका
वश में हैं इन्द्र, सिंधु, गगन, हवा

मैंने फिर निश्चित की
प्रकृति की परंपरा
रक्त क्षुद्र मानव का
मुझको स्वीकार नहीं
ऋषियों का पूत रक्त चाहिए
रक्त
और रक्त
और रक्त मुझे चाहिए

दिशि दिशि में दमक रही
छाप मम विलास की
सूर्य चंद्र छाँह बने
मेरे चंद्रहास की
ऋद्धि सिद्धि चरणों की
करती हैं आरती
मेरी ज्ञान गरिमा पर
मौन हुई भारती
मेरी अनुज्ञा बिना
न पत्ता तक हिलता है
जो न झुके शीश
वही शीश मुझे चाहिए

रक्त
और रक्त
और रक्त मुझे चाहिए

[ विलयन ]

शीश गिरे कट कट कर
कोटि रक्त कलश भरे
रावण की शक्ति देख
भूमि स्वर्ग अतल डरे

ले चुका था जन्म लेकिन
तेज यज्ञों का चिरंतन
आ गया था राम बनकर
आर्य बल विश्वास नूतन
गंग घाटी की सुघरता
उर्वरा जो मृत्तिका सी
थी वही सौंदर्य सीता
यज्ञपूत वसुंधरा सी
राजलक्ष्मी राम की बन
ब्याह कर साकेत आई
तब अवध के राज्य की
विस्तार पूनम मुसकराई

उधर रावण की प्रचंड
अनार्य संस्कृति बढ़ी भीमा

जाग सदियों बाद वह
छूने लगी थी विन्ध्यसीमा

अवध में था शोक विग्रह
राम ने बनवास पाया
राक्षसों में शक्ति संचय का
नया विश्वास आया
जाल फैला निशिचरों का
दक्षिणी पर्वत वनों में
ज्वाल हिंसा की उठी
ऋषि रक्त फैला आश्रमों में

लक्ष्य था दशकंध का
फैले न दक्षिण आर्य छाया
आश्रमों पर इसलिए था
रक्त कर उसने लगाया
और फिर वह शक्ति से
हर ले गया पृथ्वी सुता को
वंदिनी कर आर्य जग की
नीति, श्री, सुख, संपदा को

बुझ गये थे मंत्र चर्चित
यज्ञ पूजा दीप सारे

शस्त्र के संमुख झुके थे
आर्य संस्कृति के सितारे
वह प्रथम सामन्त सत्ता का
चमत्कारी उदय था
एक कर में था दुधारा
दूसरा देता अभय था

देवता, गन्धर्व, किन्नर
विवश इन्द्र, वरुण, पवन थे
दास रावण के हुए वे
त्रस्त, बन्दी, नत नयन थे
राम थे वन में, न थी
सेना, न साथी या सहायक
जातियाँ वन प्रान्त की ले
बन गये वे लोक नायक

शस्त्रों से अस्त्र बजे
वज्र के हुए प्रहार
जली स्वर्ण लंक, जले
निशिचर ज्यों कीटभार
विमल हुए दक्षिण वन
मिटा आसुरी प्रसार

हिमगिरि से कन्या तक
संस्कृति का बँधा तार

विजय राज्यलक्ष्मी ले
राम अवध लौटे जब
एक छत्र के नीचे
दीप बना भारत नव
हिन्दमहासागर तक
गूँजा मंत्रों का रव
प्रथम बार एक सूत्र
राज्य हो सका संभव

संस्कृति की ज्योति जली
युग युग में इस प्रकार
सामाजिक यत्नों से
अन्धकार गया हार
वही ज्योति द्वापर में
बनी कृष्ण मनमोहन
नैतिकता दीपक पर
जले कंस दुर्योधन
सागर के छोरों तक
जमा नीति का शासन
यज्ञ महाभारत का
बना शान्ति का सावन

जब जब इस धरती की
ज्योति थकी मुरझाई
राम, कृष्ण, गौतम औ'
गांधी बन उठ आई

इस युग में पश्चिम का
फैला जब अंधकार
दीपक की शिखा बनी
आज़ादी की पुकार
जन बल का सूर्य उठा
हारा साम्राज्यवाद
मिली राज्य लक्ष्मी फिर
भारत को युगों बाद
सामाजिक सुख की
नव रचना के खुले द्वार
नगर, ग्राम, वन, नद पर
लाने फिर से निखार

लक्ष्मी की मूर्ति नई
मिट्टी से निर्मित हो
खेतों से मिलें रत्न
श्रम सुवर्ण पूजित हो
भय, विनाश, कष्ट मिटें

युद्ध नाग खंडित हो
सुख के समान भोग से
कमला वंदित हो

जीवन जलाता जो
लौह स्वर्ण अर्थशास्त्र
मैत्री के पर्दे में
रचता प्रपंच मात्र
एक हाथ स्वर्ण लिये
एक हाथ शस्त्र घोर
नष्ट हो पिशाच नया
स्वस्थ हो समाज भोर

कातिक का श्याम फूल
दीपों की पाँखुरी
धरती पर बजे
नये जीवन की बाँसुरी

——

# सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

## दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक

| | | |
|---|---|---|
| भारतीय विचारधारा | श्री मधुकर एम. ए. | २) |
| अध्यात्म-पदावली | श्री राजकुमार जैन एम. ए. | ४।) |
| कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न | श्री शोभाचन्द्र 'भारिल्ल' | २) |
| वैदिक-साहित्य | पं० रामगोविन्द त्रिवेदी | ६) |
| जैन-शासन | पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर | ३) |

## उपन्यास, कहानियाँ

| | | |
|---|---|---|
| मुक्ति-दूत [उपन्यास] | श्री वीरेन्द्रकुमार जैन एम. ए. | ५) |
| संघर्षके बाद | श्री विष्णु प्रभाकर | ३) |
| गहरे पानी पैठ | श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय | २।) |
| आकाशके तारे : धरतीके फूल | श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' | २) |
| पहला कहानीकार | श्री रावी | २।) |
| खेल-खिलौने | श्री राजेन्द्र यादव | २) |
| अतीतके कंपन | श्री आनन्दप्रकाश जैन | ३) |

## उर्दू-शायरी

| | | |
|---|---|---|
| शेरो-शायरी | श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय | ८) |
| शेरो-सुख़न [पाँचों भाग] | श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय | २०) |

## संस्मरण-रेखाचित्र

| | | |
|---|---|---|
| हमारे आराध्य | श्री बनारसीदास चतुर्वेदी | ३) |
| संस्मरण | श्री बनारसीदास चतुर्वेदी | ३) |
| रेखा-चित्र | श्री बनारसीदास चतुर्वेदी | ४) |
| जैन-जागरणके अग्रदूत | श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय | ५) |

## कविता

| | | |
|---|---|---|
| वर्द्धमान [महाकाव्य] | श्री अनूप शर्मा | ६) |
| मिलन-यामिनी | श्री हरिवंशराय 'बच्चन' | ४) |
| धूपके धान | श्री गिरिजाकुमार माथुर | ३) |
| मेरे बापू | श्री हुक्मचन्द्र 'बुखारिया' | २॥) |
| पंच-प्रदीप | श्रीमती शान्ति एम. ए. | २) |
| आधुनिक जैन-कवि | श्रीमती रमारानी जैन | ३॥) |

## ऐतिहासिक

| | | |
|---|---|---|
| खण्डहरोंका वैभव | श्री मुनि कान्तिसागर | ६) |
| खोजकी पगडण्डियाँ | श्री मुनि कान्तिसागर | ४) |
| चौलुक्य कुमारपाल | श्री लक्ष्मीशंकर व्यास एम. ए. | ४) |
| कालिदासका भारत [१] | श्री भगवतशरण उपाध्याय | ४) |
| हिन्दी-जैन-साहित्यका सं० इतिहास | श्री कामताप्रसाद जैन | २॥।=) |

## ज्योतिष

| | | |
|---|---|---|
| भारतीय ज्योतिष | श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य | ६) |
| केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि | श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य | ४) |
| करलक्खण | प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी | ॥।) |

## विविध

| | | |
|---|---|---|
| द्विवेदी-पत्रावली | श्री बैजनाथसिंह विनोद | २॥) |
| जिन्दगी मुसकराई | श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर | ४) |
| रजतरश्मि [एकांकी नाटक] | डॉ० रामकुमार वर्मा | २॥) |
| ध्वनि और संगीत | प्रो० ललितकिशोरसिंह | ४) |
| हिन्दू-विवाहमें कन्यादानका स्थान | श्री सम्पूर्णानन्दजी | १) |
| ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ] | श्री नारायणप्रसाद जैन | ६) |
| रेडियो नाटक | श्री सिद्धनाथ कुमार एम० ए० | २॥) |
| शरद के नारीपात्र [आलोचनात्मक] | प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी | ४) |

# महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रकाशन

## सिद्धान्तशास्त्र

| | | |
|---|---|---|
| **महाबन्ध** [भाग १] | पं० सुमेरचंद्र दिवाकर न्यायतीर्थ | १२) |
| **महाबन्ध** [भाग २-३] | पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री | २२) |
| **तत्त्वार्थवृत्ति** | प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य | १६) |
| **तत्त्वार्थराजवार्तिक** [भाग १] | प्रो० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य | १२) |
| **समयसार** [अंग्रेजी] | प्रो० ए० चक्रवर्ती एम. ए. | ८) |

## चरित

| | | |
|---|---|---|
| **महापुराण** [भाग १-२] | पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य | २०) |
| **उत्तरपुराण** | पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य | १०) |
| **पुराणसंग्रह** [भाग १] | पं०गुलाबचन्द एम ए. व्याकरणाचार्य | २) |
| **धर्मशर्माभ्युदय** [धर्मनाथ-चरित] | पं० पन्नालाल साहित्याचार्य | ३) |
| **जातकट्ठकथा** [पाली] | प्रो० भिक्षु धर्मरक्षित | ९) |

## स्तोत्र, आचार

| | | |
|---|---|---|
| **वसुनन्दिश्रावकाचार** | पं० हीरालाल जैन न्यायतीर्थ | ५) |
| **जिनसहस्रनाम** [स्तोत्र] | पं० हीरालाल जैन न्यायतीर्थ | ४) |

## काव्य, न्याय

| | | |
|---|---|---|
| **न्यायविनिश्चयविवरण** [भाग १-२] | प्रो० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य | ३०) |
| **मदनपराजय** [काव्य] | प्रो० राजकुमार जैन, एम. ए. | ८) |

## कोष, छन्दशास्त्र

| | | |
|---|---|---|
| **नाममाला सभाष्य** | पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी | ३॥) |
| **सभाष्यरत्नमंजूषा** [छंदशास्त्र] | प्रो० एच० डी० वेलणकर | २) |

**भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस**

# भारतीय ज्ञानपीठ पर लोकमत

पुस्तकें हर दृष्टिकोणसे सुन्दर और उपादेय हैं। —सम्पूर्णानन्द

सभी पुस्तकें महत्त्वपूर्ण हैं। ज्ञानपीठ साहित्यकी बड़ी सेवा कर रहा है। —अमरनाथ झा

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुस्तकें बहुत उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक हैं। —हजारीप्रसाद द्विवेदी

पुस्तकोंकी छपाई, सफ़ाईके विषयमें कहना ही क्या है। बहुत ही सुन्दर हैं। —बनारसीदास चतुर्वेदी

भारतीय ज्ञानपीठके प्रकाशन हिन्दीके विभिन्न दिशाओंमें अपना स्थान बना रहे हैं। थोड़े ही दिनोंमें इस सर्व-साधन-सम्पन्न प्रकाशन संस्थाने हिन्दी जगत्में अपना समादृत स्थान बना लिया है। —सम्मेलनपत्रिका

भारतीय ज्ञानपीठके प्रकाशन विचार-प्रधान और उपयोगी होते हैं। इन सबकी छपाई साफ़ सुथरी, आवरण आकर्षक और मूल्य बहुत ही उचित होता है; कहीं-कहीं तो हम कहेंगे कि इनके प्रकाशन क़ीमतोंकी दृष्टिसे बहुत ही सस्ते हैं। —हिन्दी जगत, बम्बई

इस संस्थाकी उम्र तो ज्यादा नहीं, पर थोड़ी-सी उम्रमें ही इसने बहुत कामकर डाला है और कई अच्छे ग्रंथ निकाल दिये हैं।—नयाहिन्द इलाहाबाद

भारतीय ज्ञानपीठको प्रकाशनक्षेत्रमें आये अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं, परन्तु इसी बीचमें अपनी सुरुचि और सुघरताकी छाप उसने हिन्दी पाठकके मनपर लगा दी है। साहित्यके लक्ष्यको उसने अपनी दृष्टिसे ओझल नहीं होने दिया है। —जीवनसाहित्य

भारतीय ज्ञानपीठके प्रत्येक प्रयोग हिन्दी इतिहासमें मीलके पत्थर रहेंगे। हिन्दीके मापदण्डके प्रतीक! —नवभारतटाइम्स, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ द्रुतगतिसे जनमानसको स्वस्थ बनाये रखनेके लिए ठोस सामग्री दे रहा है। —लोकवाणी, जयपुर

भारतीय ज्ञानपीठने अनेक सुन्दर और उपयोगी पुस्तकोंका प्रकाशन करके साहित्यके भाण्डारको परिपूर्ण किया है। —अजन्ता, हैदराबाद

# भारतीय ज्ञानपीठ पर लोकमत

पुस्तकें हर दृष्टिकोणसे सुन्दर और उपादेय हैं। —सम्पूर्णान

सभी पुस्तकें महत्त्वपूर्ण हैं। ज्ञानपीठ साहित्यकी बड़ी सेवा रहा है। —अमरनाथ झ

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुस्तकें बहुत उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक —हजारीप्रसाद द्विवेद

पुस्तकोंकी छपाई, सफ़ाईके विषयमें कहना ही क्या है। बहुत सुन्दर हैं। —बनारसीदास चतुर्वे

भारतीय ज्ञानपीठके प्रकाशन हिन्दीके विभिन्न दिशाओंमें अपना स्थ बना रहे हैं। थोड़े ही दिनोंमें इस सर्व-साधन-सम्पन्न प्रकाशन संस्थ हिन्दी जगत्में अपना समादृत स्थान बना लिया है। —सम्मेलनपत्रिक

भारतीय ज्ञानपीठके प्रकाशन विचार-प्रधान और उपयोगी होते इन सबकी छपाई साफ़ सुथरी, आवरण आकर्षक और मूल्य बहुत ही उचि होता है; कहीं-कहीं तो हम कहेंगे कि इनके प्रकाशन क़ीमतोंकी दृष्टिसे ब ही सस्ते हैं। —हिन्दी जगत, बम्ब

इस संस्थाकी उम्र तो ज्यादा नहीं, पर थोड़ी-सी उम्रमें ही इसने ब कामकर डाला है और कई अच्छे ग्रंथ निकाल दिये हैं।—नयाहिन्द इलाहाब

भारतीय ज्ञानपीठको प्रकाशनक्षेत्रमें आये अभी बहुत दिन नहीं हैं, परन्तु इसी बीचमें अपनी सुरुचि और सुघरताकी छाप उसने हि पाठकके मनपर लगा दी है। साहित्यके लक्ष्यको उसने अपनी दृष्टिसे ओझ नहीं होने दिया है। —जीवनसाहित्

भारतीय ज्ञानपीठके प्रत्येक प्रयोग हिन्दी इतिहासमें मीलके पत्थ रहेंगे। हिन्दीके मापदण्डके प्रतीक! —नवभारतटाइम्स, बम्ब

भारतीय ज्ञानपीठ द्रुतगतिसे जनमानसको स्वस्थ बनाये रखनेके लि ठोस सामग्री दे रहा है। —लोकवाणी, जयपु

भारतीय ज्ञानपीठने अनेक सुन्दर और उपयोगी पुस्तकोंका प्रकाश करके साहित्यके भाण्डारको परिपूर्ण किया है। —अजन्ता, हैदराबा

# भारतीय ज्ञानपीठ काशी

## उद्देश्य

ानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका
अनसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

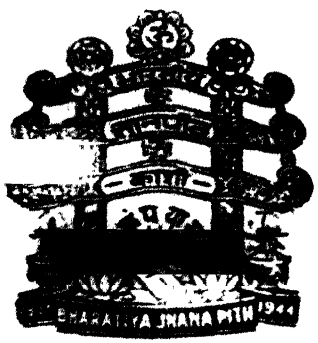


संस्थापक
ाहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्ष
श्रीमती रमा जैन

# भारतीय ज्ञानपीठ काशी

## उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

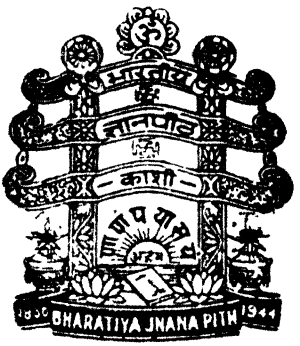


संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन